

सर्वप्रमाण चक्रवर्ती
श्रीमद्भागवत



प्राक्कथन

जिस प्रकार एकमात्र माता के शब्दों पर विश्वास करके ही पिता का यथार्थ परिचय प्राप्त किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई विधि नहीं है; उसी प्रकार वैदिक शास्त्रों के अपौरुषेय शब्दों पर विश्वास करके ही परम पिता परमेश्वर का यथार्थ परिचय प्राप्त किया जा सकता है, अन्य किसी स्वतन्त्र विधि का आविष्कार करने से यह सम्भव नहीं है। अतः पिता के सम्बन्ध में जिस तरह माता के शब्द एकमात्र प्रमाण है, उसी तरह परमेश्वर के सम्बन्ध में वैदिक शास्त्रों के अपौरुषेय शब्द ही एकमात्र प्रमाण है।

वैदिक शास्त्रों के विभिन्न भेद हैं और परमेश्वर के विषय में उनके निर्णय भी भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। ऐसी जटिल स्थिति में एक ऐसे सर्व शास्त्र अर्थ निर्णायक परमशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है, जो सर्व शास्त्रों के अर्थों का समन्वय करता हो और जिसका निर्णय चक्रवर्ती राजा की भाँति अन्तिम और सर्वमान्य हो। इस भूतल पर ऐसा एकमात्र शास्त्र श्रीमद्भागवत ही है; इसलिये श्रीमद्भागवत ही सर्वप्रमाण चक्रवर्ती है।

प्रस्तुत 'सर्वप्रमाण चक्रवर्ती श्रीमद्भागवत' पुस्तिका में विस्तार एवं युक्तिपूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि श्रीमद्भागवत ही परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने में सर्वोच्च प्रमाण है। यह गौड़ीय वैष्णव तत्त्वाचार्य विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामीपाद जी द्वारा स्वरचित 'श्री तत्त्वसन्दर्भ' ग्रन्थ पर आधारित है और मैंने उन्हीं की प्रसन्नता के लिये इसका सम्पादन किया है। महान वैष्णवाचार्य की प्रसन्नता में ही उनके अनुगत वैष्णवों का कल्याण भी निहित है। अतः आशा

करता हूँ कि जीवानुग वैष्णव इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे और अन्यो के लाभ के लिये इसका जन—जन में वितरण भी करेंगे । अन्ततः मैं परमेश्वर के विषय में निर्णायक ज्ञान पाने के इच्छुक जिज्ञासु महानुभावों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तिका का स्वाध्याय अवश्य करें और दिव्य ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर हों ।

जीवानुग तेजस्वी दास
(संस्थापकाध्यक्ष **GBPS** ट्रस्ट, वृन्दावन)

प्रकाशक — **GBPS** (गीता—भागवत प्रचार सेवा) ट्रस्ट,
वृन्दावन

(सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित)

1) प्रमाण की परिभाषा व प्रकार

यथार्थ ज्ञान को संस्कृत में ‘प्रमा’ कहते हैं। **‘प्रमायाः करणं प्रमाणम्’** अर्थात् यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति जिस साधन या उपाय से हुआ करती है, उसे प्रमाण कहते हैं।

जब कोई वक्ता अपने श्रोताओं को और लेखक अपने पाठकों को अपने सिद्धान्तों या विचारों के प्रति आश्वस्त करना चाह रहा हो तब उसे प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है। प्रमाण द्वारा प्रमाणित होकर ही वह सिद्धान्त या विचार स्वीकार करने योग्य माना जाता है। विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामी पाद जी ने श्रीभागवत सन्दर्भ ग्रन्थ के परिशिष्ट श्री सर्वसम्वादिनी ग्रन्थ में दस प्रकार के प्रमाण बताये हैं—

“प्रत्यक्षानुमानशब्दार्थोपमानार्थापत्त्यभावसम्भवैतिह्य-
चेष्टाख्यानि दश प्रमाणानि विदितानि”

अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, आर्ष, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य व चेष्टा— ये दस प्रमाण होते हैं ।' इनका विवरण निम्नलिखित है—

1) प्रत्यक्ष प्रमाण— मन एवं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। अतः नेत्रादि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। नेत्रों द्वारा देखने से उत्पन्न चाक्षुष ज्ञान, कानों द्वारा सुनने से उत्पन्न श्रावण ज्ञान, नासिका द्वारा सूँघने से उत्पन्न घ्राणज ज्ञान, जिह्वा या रसना द्वारा चखने से उत्पन्न रासन ज्ञान, त्वचा द्वारा स्पर्श करने से स्पर्शन ज्ञान एवं मन द्वारा अनुभव करने से उत्पन्न मानस ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत है।

i) चाक्षुष ज्ञान— नयी पुस्तक पर दृष्टि पड़ने से यह ज्ञान होता है कि पुस्तक नयी है।

ii) श्रावण ज्ञान— नेत्र बन्द होने पर भी घंटे की ध्वनि सुनाई पड़ने पर यह ज्ञान होता है कि घंटा बजा है।

iii) स्पर्शन ज्ञान— बर्फ हाथ में लेने से यह ज्ञान होता है कि बर्फ बहुत ठण्डी है।

iv) घ्राणज ज्ञान— पुष्प सूँघने पर यह ज्ञान होता है कि पुष्प सुगन्धित है।

v) रासन ज्ञान- फल चखने पर यह ज्ञान होता है कि फल मीठा है।

vi) मानस ज्ञान— शारीरिक व मानसिक पीड़ा की अनुभूति होना, शुभ—अशुभ समाचार सुनकर सुःख—दुःख की अनुभूति होना और किसी को दरिद्रता से पीड़ित देखकर दया—करुणा की अनुभूति होना ।

2) अनुमान प्रमाण— पहले से प्रत्यक्ष की हुई किसी वस्तु से सम्बन्धित अप्रत्यक्ष वस्तु के ज्ञान को अनुमान कहते हैं और अनुमान पर आधारित प्रमाण अनुमान प्रमाण कहलाता है।

उदाहरण— किसी स्थान पर धुआँ दिखते ही यह अनुमान हो जाता है कि उस स्थान पर अग्नि है। हमें इस बात का पहले से

ही प्रत्यक्ष ज्ञान रहता है कि अग्नि के साथ धुआँ अवश्य रहता है, अतः जहाँ धुआँ है, वहाँ अग्नि प्रत्यक्ष न रहने पर भी हमें अप्रत्यक्षतः यह अनुमान हो जाता है कि वहाँ अग्नि होगी।

3) आर्ष प्रमाण— देवताओं व सतोगुणी ऋषियों के वचन को आर्ष प्रमाण कहते हैं।

उदाहरण— देवताओं व ऋषियों के अनुभव वाक्य

4) उपमान प्रमाण— किसी ज्ञात वस्तु के साथ मिलती-जुलती होने से अज्ञात वस्तु का ज्ञान होना उपमान कहलाता है और उपमान पर आधारित प्रमाण उपमान प्रमाण कहलाता है।

उदाहरण— जिस व्यक्ति ने कभी नीलगाय नहीं देखी, तो उसे गाय दिखाकर कह दिया जाता है कि नीलगाय भी इसी के सदृश एक पशु होता है। इस प्रकार गाय की सदृशता से नीलगाय का जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह उपमान जन्य ज्ञान के अन्तर्गत है।

5) अर्थापत्ति प्रमाण— किसी कहे हुए अर्थ से जो दूसरा अर्थ निकलता है अथवा एक बात कहने से दूसरी जब बिना कहे ही समझ ली जाती है, उसे अर्थापत्ति कहते हैं और अर्थापत्ति पर आधारित प्रमाण अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है।

उदाहरण— जैसे देवदत्त स्थूलकाय या मोटा व्यक्ति है, किन्तु वह दिन में भोजन ग्रहण नहीं करता। इस बात से तुरन्त यह अनुमान लगा लिया जायेगा कि अवश्य ही वह रात में भोजन ग्रहण करता होगा; क्योंकि उसका स्थूलकाय होना भोजन

ग्रहण किये बिना असम्भव है।

6) अभाव प्रमाण— किसी वस्तु की अनुपस्थिति अथवा अनुपलब्धि जिस प्रमाण से सिद्ध होती है, उसे अभाव प्रमाण कहते हैं।

उदाहरण—

i) चूहें बिल से निकलकर बैठे हुए हैं। इस बात से यह अनुमान लगा लिया जाता है कि चूहों के आसपास बिल्ली अनुपस्थित है।

ii) वैष्णवों के समूह को संकीर्तन करता हुआ देखकर यह अनुमान लगा लिया जाता है कि इनमें शून्यवादी बौद्ध और निर्विशेषवादी ज्ञानी सम्मिलित नहीं है।

7) सम्भव प्रमाण— व्यापक के भीतर व्याप्य का होना अथवा अंगी के भीतर अंग का होना अथवा अंशी के भीतर अंश का होना जिस प्रमाण से सिद्ध होता है, उसे सम्भव प्रमाण कहते हैं।

उदाहरण— दो हजार के नोट में पाँच सौ का नोट भी सम्मिलित रहने की जो सम्भावना है, यह सम्भव प्रमाण के अन्तर्गत है।

8) ऐतिह्य प्रमाण— जो बात परम्परा क्रम से चली आ रही हो और जिसके विषय में यह ज्ञात न हो कि इसका आरम्भ कहाँ से हुआ है? अर्थात् वह बात कब व किसने कही है? फिर भी वह बात परम्परा क्रम से प्रचलित हो-तो वह बात ऐतिह्य प्रमाण

2) शब्द प्रमाण की सर्वश्रेष्ठता

मायाधीन मनुष्य में चार दोष पाए जाते हैं :-

i) भ्रम— मिथ्या ज्ञान को भ्रम कहते हैं अथवा एक वस्तु को वास्तविक रूप में न पहचानकर गलत रूप में निर्णय कर लेना ही भ्रम कहलाता है। भ्रम दो तरह का होता है—

क) मति विपर्यय— शरीर में आत्म बुद्धि रखना अर्थात् मैं एक आत्मा हूँ किन्तु अज्ञान के कारण स्वयं को शरीर मानता हूँ।

ख) संशय— भगवान् की सत्ता वास्तविक है अथवा कल्पना मात्र? इस तरह की मानसिकता होना संशय कहलाता है। नाना प्रकार के कारणों से नाना प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे अन्धकार के कारण रस्सी में साँप का भ्रम हो जाना, स्वर्ण की गुणवत्ता से अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा पीतल के आभूषण को स्वर्णनिर्मित समझ लेना, पीलिया के रोगी द्वारा सफेद शंख का पीला दिखाई देना, रेगिस्तान में सूर्य की तेज धूप के कारण चमकती हुई बालू में जल का भ्रम हो जाना इत्यादि।

ii) प्रमाद— मन की असावधानी को प्रमाद कहते हैं। इन्द्रियों की क्रियाओं के साथ मन का संयोग न रहने से त्रुटियाँ हो जाती है। जैसे चलते समय मार्ग पर दृष्टि रहते हुए भी मनुष्य ठोकर खाकर गिर पड़ता है; क्योंकि उसका मन उस समय दृष्टि के साथ संयुक्त नहीं होता। इसी तरह विद्वान् पुरुष प्रवचन सुनते हुए भी कभी-कभी कुछ समझ नहीं पाता; क्योंकि मन कानों के साथ संयुक्त नहीं रहता, हरिनाम की

माला जपते हुए मन का संयोग न रहने से जिह्वा से अशुद्ध नामोच्चारण हो जाना, बुद्धि व जिह्वा के साथ मन का संयोग न रहने से वक्ता के मुख से अनुचित शब्द निकल जाना इत्यादि ।

iii) विप्रलिप्सा— स्वयं के दोषों को छिपाकर अन्य को ठगने या छलने की प्रवृत्ति को विप्रलिप्सा कहते हैं । जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति भी स्वयं की अल्पज्ञता को छिपाकर अपने को विद्वान की भाँति प्रस्तुत करके अन्यो को ठगता है, दुर्गुणी व्यक्ति भी अपने दुर्गुणों को छिपाकर स्वयं को सद्गुणी व्यक्ति की तरह प्रस्तुत करके अन्यो को छलता है इत्यादि ।

iv) करणापाटव— इन्द्रियों की अपटुता या असमर्थता को करणापाटव कहते हैं । जैसे देखने की शक्ति होने पर भी कोई व्यक्ति अंधेरे कमरे में पुस्तक नहीं पढ़ सकता, मनुष्य के नेत्र अत्यंत निकट व अति दूर की वस्तु को नहीं देख पाते, सूर्य—चंद्र विराट आकार के होते हुए भी नेत्रों को छोटे—छोटे दिखते हैं, मनुष्य के कान अति मन्द या अति उच्च ध्वनि तरंगो को नहीं सुन पाते, एक समय में अनेक मनुष्यों के वार्तालाप को एकसाथ सुनकर भी मनुष्य समझ नहीं सकता इत्यादि ।

उपर्युक्त चार प्रकार के दोष मायाधीन समस्त मनुष्यों में पाये जाते हैं, किन्तु जो मायातीत मनुष्य और मायापति भगवान् है उनमें ये दोष नहीं रहते । मायातीत पुरुष यथा— उच्चकोटि के सन्त पुरुष, जिनमें श्रीब्रह्मा, श्रीशिवजी, श्रीनारदजी, श्रीसनकादि मुनिजन, श्रीवेदव्यास जी, श्रीगर्ग मुनि, श्रीशाण्डिल्य ऋषि आदि प्रमुख हैं और समस्त भगवत् स्वरूप यथा श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्णु, श्रीनृसिंह, श्रीचैतन्य महाप्रभु

आदि सभी मायापति है।

मायातीत पुरुष व भगवान् उपर्युक्त चार दोषों से मुक्त है और वास्तविक व पूर्ण ज्ञान प्रदान करने में सक्षम होते हैं; जैसा कि श्रीचैतन्य चरितामृत आदि लीला (2-86) में लिखा है—

**भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव।
आर्ष-विज्ञ-वाक्ये नाहि दोष एइ सब॥**

“ऋषियों के विवेकपूर्ण वाक्यों में भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा व करणापाटव दोष नहीं रहते।”

अतः जब मायातीत ऋषियों के वचन भी इन चार दोषों से मुक्त रहने के कारण पूर्ण व त्रुटिरहित हैं; तो फिर साक्षात् भगवान् के वचन कैसे अपूर्ण व त्रुटिरहित हो सकते हैं? कहने का तात्पर्य यह है कि साक्षात् भगवान् के वचन सम्पूर्णतः त्रुटिरहित व परम सत्य होते हैं। साक्षात् भगवान् के वचनों को अपौरुषेय शब्द भी कहा जाता है। पौरुषेय शब्द का तात्पर्य मायाधीन पुरुष के शब्द से है और अपौरुषेय शब्द भगवान् के शब्द होते हैं। मायातीत सन्त पुरुषों के शब्द अपौरुषेय शब्दों की भाँति त्रुटिरहित तो होते हैं किन्तु अपौरुषेय नहीं होते। उनके शब्द भगवान् के अपौरुषेय शब्दों का अनुगमन करने वाले होते हैं, इसलिए पूर्ण भी होते हैं। अपौरुषेय शब्द प्रमाण ही दस प्रमाणों में सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना गया है।

गौड़ीय वैष्णव तत्त्वाचार्य— विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामी पाद जी श्री तत्त्व संदर्भ के प्रथम अनुच्छेद में लिखते हैं—

**“तत्र पुरुषस्य भ्रमादिदोषचतुष्टय-दृष्टत्वात्
सुतरामलौकिकाचिन्त्यस्वभाववस्तुस्पर्शयोग्यत्वाच्च
तत्प्रत्यक्षादीन्यपि सदोषाणि”**

अर्थात् 'मनुष्य में भ्रमादि दोष चतुष्टय देखे जाते हैं; इसलिए परमार्थ वस्तु परमेश्वर, जो अलौकिक व अचिन्त्य स्वभाव वाले हैं, उन्हें जानने-समझने में भी ऐसे दोषयुक्त मनुष्य अयोग्य ही सिद्ध होते हैं। अतः प्रत्यक्षादि नौ प्रमाण भी परमेश्वर को जानने में दोषयुक्त ही हैं।'

प्रत्यक्षादि प्रमाणों में दोष:-

परमेश्वर अलौकिक पुरुष है; इसलिए लौकिक नेत्रादि इन्द्रियों द्वारा उनका दर्शन अनुभव नहीं किया जा सकता। इन्द्रियों में करणापाटव दोष रहता है, मन में प्रमाद व विप्रलिप्सा रहते हैं और बुद्धि में भ्रम रहता है, इसलिए इन दोषपूर्ण इन्द्रियों से प्राप्त त्रुटिपूर्ण व अपूर्ण ज्ञान पर आधारित प्रत्यक्ष प्रमाण परमेश्वर व उनकी विराट सृष्टि के विषय में निर्भरता योग्य नहीं है। जो लोग परमेश्वर के अस्तित्व को इसलिए नकारते हैं कि उनके विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल पाता, ऐसे नास्तिक लोगों को यह समझना चाहिए कि प्रत्यक्ष प्रमाण दोषपूर्ण होने से परमेश्वर को जानने में निर्भरता योग्य नहीं होता। बद्धजीव की नेत्रादि इन्द्रियाँ इन चार दोषों के कारण परमेश्वर का साक्षात्कार जब कर ही नहीं सकती तो फिर प्रत्यक्ष प्रमाण की महत्ता ही निरस्त हो जाती है। शब्द प्रमाण के अतिरिक्त अन्य सभी प्रमाण मनुष्य की इन्द्रियों व मन-बुद्धि पर आधारित होते हैं, अतः वे परमार्थ तत्त्व के निर्णय में निर्भरता योग्य नहीं है। किन्तु विशेष परिस्थितियों में प्रत्यक्षादि प्रमाण यदि शब्द प्रमाण के अनुगत है तो स्वीकार करने योग्य हो सकते हैं। अतः समस्त लौकिक व अलौकिक ज्ञान प्राप्ति के लिए अपौरुषेय शब्दों का भण्डार स्वरूप वेद ही एकमात्र प्रमाण है। **वेद ही एकमात्र प्रमाण क्यों हैं?** पहला कारण यह कि वेद अप्राकृत

रचना है, भगवान् की वाणी है; अतः वेद ज्ञान समस्त त्रुटियों व संशयों से रहित है। दूसरा कारण यह कि वेद का ज्ञान गुरु—शिष्य परम्परा से प्राप्त किया जाता है। गुरुमुख से निर्गत वेद वाक्यों को शिष्य बिना किसी तर्क—वितर्क के श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। वेद ज्ञान ग्रहण करते समय गुरु व वेद के प्रति श्रद्धा को महत्त्व दिया जाता है, तर्क को नहीं। वेदान्त सूत्र (2—1—12) में कहा गया है:—

“तर्काप्रतिष्ठानात्”

अर्थात् 'तर्क की स्थिरता नहीं होती।'

महाभारत भीष्म पर्व (5-12) में कहा गया है:-

"अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्"

अर्थात् 'अचिन्त्य तत्त्व परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को तर्क का प्रयोग नहीं करना चाहिए।' दूसरे शब्दों में बिना किसी तर्क के श्रद्धापूर्वक ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करना चाहिये। यहाँ तर्क से तात्पर्य उन शुष्क तर्कों से है, जो वेद शास्त्रानुगत नहीं, वेद—शास्त्र पर आधारित नहीं; अपितु स्वतंत्र चिन्तन पर आधारित है। वेद—शास्त्रानुगत तर्क का आश्रय अवश्य लेना चाहिये, किन्तु वेद—शास्त्र के विरुद्ध तर्क का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये। शास्त्र का अर्थ करते समय पूर्वापर का विचार करके कौन सा अर्थ कहाँ ग्रहण किया जाये अर्थात् कौन सा अर्थ उचित है और कौन सा अर्थ अनुचित? इस विवेक का नाम तर्क या युक्ति है। युक्ति का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

वेदान्त सूत्र (1-1-3) में कहा गया है:-

“शास्त्रयोनित्वात्” अर्थात् ‘उस ब्रह्म को जानने का स्रोत केवल अपौरुषेय शास्त्र है।’

इसी तरह वेदान्त सूत्र (2-1-17) में कहा गया है:-

“श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्” अर्थात् ‘श्रुति या वेद ही मूल शब्द या अपौरुषेय शब्द है।’

श्रीमद्भागवत (11-20-4) में श्री उद्धव जी श्रीकृष्ण के प्रति कहते हैं-

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ।
श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ।।

‘हे परमेश्वर! पितृगण, देवगण व मनुष्यों के लिये वेद ही श्रेष्ठ चक्षु या मार्गदर्शक है; क्योंकि वेद के द्वारा ही दृष्टि से परे की लोकातीत वस्तुओं व स्वर्ग-मोक्षादि विषयों का बोध होता है और साध्य-साधन का निर्णय भी वेद के द्वारा ही होता है।’ अतः उपर्युक्त प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि वेद ही एकमात्र शब्द प्रमाण है और शब्द प्रमाण ही प्रत्यक्षादि प्रमाणों से श्रेष्ठ है।

3) पंचम वेद का उत्कर्ष

कलियुग में वेद के अपौरुषेय शब्दों का सम्यक ज्ञान अत्यन्त कठिन है, क्योंकि एक तो वेद की भाषा ही क्लिष्ट है और दूसरी बात यह कि वेद का विषय सूत्र रूप में है; जिसे समझना

सहज नहीं है और फिर वेद का अर्थ निर्णय करने वाले जो वेदभाष्यकार विद्वत्जन हैं, वे भी परस्पर विरोधी मत वाले हैं। ऐसी परिस्थिति में मूल चार वेदों पर पूर्णतः आश्रित रहना सर्वथा कल्याणप्रद नहीं होगा। इसलिए विश्वगुरु श्रील जीवगोस्वामीपाद जी श्री तत्त्वसन्दर्भ के चतुर्थ अनुच्छेद में परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं—

**“वेदरूपो वेदार्थनिर्णायकश्चेतिहासपुराणात्मकःशब्दएव
विचारणीयः”**

अर्थात् ‘वेदरूप और वेद के अर्थ निर्णायक इतिहास—पुराण के शब्द ही विचारणीय है।’
श्री महाभारत (आदि पर्व 1—267) में उल्लेख मिलता है—

“इतिहास—पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्”

अर्थात् ‘वेद की व्याख्या इतिहास—पुराण के द्वारा करनी चाहिये।’

इतिहास—पुराण वेदरूप ही हैं, इसलिये इनके द्वारा वेद की सम्यक् व्याख्या सम्भव है। विशेष रूप से पुराण तो वेद के ही पूरक हैं।

“पूरणात् पुराणम्” अर्थात् ‘जो वेद को पूर्ण करे, वही पुराण है’
अपौरुषेय होने से वेद का ज्ञान पूर्ण ही है, किन्तु वेद परमार्थ तत्त्व का निरूपण अत्यन्त गोपनीय ढंग से और जटिल भाषा व अतिसंक्षेप में करते हैं; जिससे वेद को समझना प्रायः असम्भव हो जाता है। पुराण उन गुप्त विषयों का रहस्योद्घाटन कर उन्हें अति सरस, बोधगम्य व सुविस्तृत बना देते हैं। इसलिये कहा गया है कि पुराण वेद को पूर्ण करते हैं। किन्तु जो वेद नहीं है, उसके द्वारा वेद को पूर्ण करना सम्भव नहीं है। जिस

प्रकार सोने के अधूरे कंकण को काँच द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार वेदेतर या अवैदिक शास्त्रों के द्वारा वेद की पूर्णता और व्याख्या नहीं की जा सकती। अतः पुराण वेदरूप हैं, तभी ये वेद के पूरक हैं।

इतिहास—पुराण की वेदरूपता को सिद्ध करने के लिये शास्त्रों में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम वेदान्त या उपनिषद के प्रमाण दिये जा रहे हैं—

**“एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वीगिरस इतिहासः पुराणम्”**

(बृहद्—आरण्यकोपनिषद्, 2-4-10)

श्री याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी के प्रति कहा— ‘यह जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास और पुराण हैं— सभी परमेश्वर के निःश्वास से प्रकट हुए हैं।’ अर्थात् परमेश्वर के निःश्वास से प्रकट होने के कारण जिस प्रकार चार वेद अपौरुषेय हैं, उसी प्रकार इतिहास पुराण भी अपौरुषेय हैं और इतिहास—पुराण भी वेदरूप हैं, वेद से अभिन्न हैं।

**“ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं
चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्”**

(छान्दोग्योपनिषद् 7-1-12)

‘हे भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद एवं इन चार वेदों के पाँचवें वेद इतिहास—पुराण का विचार करता हूँ।’ अर्थात् इतिहास पुराण पाँचवां वेद है और चार वेदों का भाष्य रूप है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में श्री सूत जी के वचन हैं:—

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ।

इतिहास पुराणञ्च पञ्चमो वेद उच्यते ॥

(श्रीभा० १-४-२०)

‘ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद नामक चार वेदों का विभाजन किया गया और इतिहास व पुराणों को पाँचवां वेद कहा जाता है ।’ अर्थात् महर्षि श्री वेदव्यास द्वारा एक ही मूल वेद को पाँच वेदों में विभक्त कर दिया गया, जिनमें इतिहास पुराण को पाँचवां वेद कहा जाता है ।

श्री मैत्रेय जी श्री विदुर के प्रति कहते हैं—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।

सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥

(श्रीभा० ३-१२-३९)

‘सर्वदर्शी श्री ब्रह्मा जी ने अपने सभी मुखों से इतिहास—पुराण नामक पाँचवां वेद बनाया ।’

श्री महाभारत के मोक्षधर्म पर्व में कहा गया है—

“पुराणं पञ्चमो वेदः” अर्थात् ‘पुराण पाँचवां वेद है ।’

भविष्य पुराण में कहा गया है—

“कार्णञ्च पञ्चमं वेदं यन्महाभारतं स्मृतम्”

अर्थात् ‘कृष्णद्वैपायन महर्षि श्री वेदव्यास कृत श्री महाभारत पाँचवां वेद है ।’

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि इतिहास (महाभारत) और पुराण वेदरूप है ।

अब प्रश्न उठता है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद ये चार वेद हैं और इतिहास—पुराण पाँचवां वेद है, ऐसा क्यों कहा गया है? ये क्यों नहीं कहा गया कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और इतिहास—पुराण ये पाँच वेद होते हैं? इतिहास—पुराण को अलग से पाँचवां वेद क्यों कहा है?

इन प्रश्नों का उत्तर समझने के लिये एक दृष्टांत दिया जा रहा है—

“यज्ञदत्त सहित पाँच ब्राह्मण भोजन कर रहे थे”

स्पष्ट है कि यज्ञदत्त भी एक ब्राह्मण ही है, ब्राह्मणेतर या कोई गैर ब्राह्मण नहीं है। इसी प्रकार इतिहास—पुराण सहित पाँच वेद हैं— ऐसा कहने से पञ्चम वेद इतिहास—पुराण का वेदत्व ही सिद्ध होता है। इतिहास पुराण का वेदत्व अलग से गिनाने का कारण यह है कि इतिहास पुराण के वेदत्व और अन्य चार वेदों के वेदत्व में भिन्नता भी है। पहली भिन्नता यह है कि चार वेदों के वाक्यों में स्वर—क्रम पूर्वक उच्चारण का विधान है। निर्धारित स्वर—क्रम में उच्चारण न करने से वाक्यों का उच्चारण निष्फल या विपरीत फल प्रदाता भी हो सकता है; जबकि इतिहास—पुराण रूप पञ्चम वेद में स्वर—क्रम पूर्वक उच्चारण का विधान नहीं है। दूसरी भिन्नता यह है कि चार वेदों के पाठ या स्वाध्याय का अधिकार उपनयन संस्कार युक्त सात्त्विक व्यक्ति को ही प्राप्त है; जबकि इतिहास—पुराण रूप पञ्चम वेद के पाठाधिकार में ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। तीसरी भिन्नता यह है कि चार वेदों में परमार्थ तत्त्व परमेश्वर का प्रतिपादन अत्यन्त जटिल भाषा में, सूत्र रूप में संक्षिप्त करके फिर प्रच्छन्न भाव से किया गया है; जबकि इतिहास—पुराण

रूप पंचम वेद में उसी परमेश्वर का निरूपण सरल भाषा में, अतिविस्तारपूर्वक व स्पष्टतापूर्वक किया गया है। अतः इतिहास—पुराण की चार वेदों से इन्हीं भिन्नताओं के कारण अलग से पञ्चम वेद होने की बात शास्त्रों में कही गयी है।

इतिहास—पुराण न केवल वेदरूप हैं, अपितु ये चार वेदों के अर्थ निर्णायक भी हैं। इस विषय में भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

**भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थः प्रदर्शितः ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ॥
(श्री विष्णुपुराण)**

‘महर्षि श्री वेदव्यास ने महाभारत नामक इतिहास के बहाने से वेदों का अर्थ ही प्रदर्शित किया है और समस्त वेद पुराणों में ही प्रतिष्ठित है, इसमें कोई संशय नहीं है।’ अर्थात् चार वेदों के गूढ़ार्थों की व्याख्या और उनके छिन्न अंशों के अर्थों की पूर्णता पुराणों द्वारा ही होती है, इसलिये चारों वेद निश्चल भाव से पुराणों में ही विद्यमान है।

स्कन्दपुराण— प्रभास खण्ड (2—90,91,92,93) में वर्णित है—

**वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः ।
वेदाःप्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ॥**

‘हे द्विजोत्तम जनो! जिस तरह वेद का अर्थ स्थिर व सर्व स्वीकार्य होने से निश्चल है, उसी तरह मैं पुराणों के अर्थों को भी निश्चल मानता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदों के सभी विषय पुराणों में ही प्रतिष्ठित हैं।’

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदोमामयं चालयिष्यति ।
इतिहास—पुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा ॥

‘मेरे अर्थों का निर्णय करने में असमर्थ अल्पज्ञ लोग अपने मनमाने अर्थों द्वारा मेरा स्वरूप विकृत करके मुझे विचलित कर देंगे—वेदों के इस भय को जानकर श्री भगवान् ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही वेदों के अर्थ— निर्णायक इतिहास—पुराणों को प्रकट करके, वेदों को निश्चल कर दिया है’ अर्थात् इतिहास—पुराणों में चार वेदों का वास्तविक अर्थ प्राप्त होता है ।

यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते ॥

‘हे द्विजों! जो विषय वेदों में अस्पष्ट हैं , वह स्मृतियों में स्पष्ट हैं और जो विषय इन दोनों में ही अस्पष्ट हैं, वह पुराणों में स्पष्टतया वर्णित हैं ।’

यो वेद चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजाः ।
पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः ॥

‘हे द्विजों! जो व्यक्ति षडङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष व छन्द) व उपनिषदों (मुख्यतः 108) सहित चार वेदों का ज्ञाता है, किन्तु उसे पुराणों का ज्ञान नहीं है, तो वह सर्वशास्त्र पारंगत या विचक्षण नहीं माना जा सकता ।’

पद्मपुराण अंतर्गत शिव-उमा संवाद में विवरण प्राप्त होता है—

**अन्तं गतोऽपि वेदानां सर्वशास्त्रार्थवेद्यपि ।
पुंसोऽश्रुतपुराणस्य न सम्यग्गतिदर्शनम् ॥**

‘जिसने वेदों में निपुणता प्राप्त कर ली है और सर्वशास्त्रों का तात्पर्य भी जान लिया है; इतने पर भी जिस मनुष्य ने पुराण विद्या श्रवण नहीं की, उसे सम्यक् तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता ।’ इसी प्रकार महाभारत शास्त्र में महाभारत को वेदों से अधिक महत्त्वपूर्ण वर्णित किया है—

**निर्णयः सर्वशास्त्राणां भारतं परिकीर्तितम् ।
भारतं सर्ववेदाश्च तुलामारोपिताः पुरा ।
देवैर्ब्रह्मादिभिः सर्वऋषिभिश्च समन्वितैः ॥
व्यासस्यैवाज्ञया तत्र त्वत्यरिच्यत भारतम् ।
महत्त्वाद्भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते ॥**

‘सर्वशास्त्रों का निर्णय जिस शास्त्र में किया गया है, उसे भारत कहते हैं। महर्षि श्री वेदव्यास जी की अनुमति से ब्रह्मादि देवगणों व ऋषिगणों ने मिलकर भारत शास्त्र को तुला के एक पलड़े पर और चारों वेदों को दूसरे पलड़े में रखा किन्तु भारत का भार ही अधिक हुआ। अतः भारत का महत्त्व वेदों से अधिक होने के कारण ही, इसका नाम महाभारत प्रसिद्ध हुआ।’ अर्थात् महाभारत नामक इतिहास ग्रंथ को समस्त मानकों पर परखने के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि महाभारत वेदों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पंचम वेद इतिहास-पुराण का उत्कर्ष स्थापित करने के

पश्चात् विश्वगुरु श्रीलजीवगोस्वामी पाद जी श्री तत्त्वसंदर्भ के सातवें अनुच्छेद में लिखते हैं—

**“तदेवमितिहास—पुराण विचार एव श्रेयानिति सिद्धम् ।
तत्रापि पुराणस्यैव गरिमा दृश्यते ।”**

अर्थात् ‘इस प्रकार यही सिद्ध होता है कि परमार्थ तत्त्व परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इतिहास—पुराण का विचार करना ही श्रेयस्कर है। इतिहास—पुराण में भी पुराणों का गौरव ही अधिक दिखाई देता है।’ व्यतिरेक भाव से पुराणों की महिमा वर्णित देखकर पुराणों का गौरव ही अधिक स्थापित होता है। शास्त्रज्ञों के अनुसार अन्वय व व्यतिरेक आज्ञा में व्यतिरेक आज्ञा अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। जैसे सदैव हरिनाम जपिये— यह अन्वय या विधि आज्ञा है और हरिनाम जपना कभी मत भूलो— यह व्यतिरेक या निषेध आज्ञा है। निषेध आज्ञा विधि आज्ञा से अधिक बलवती होती है। अभी तक इतिहास—पुराणों का जो माहात्म्य वर्णित हुआ है, वह अन्वय या विधिपरक है अर्थात् इतिहास का माहात्म्य भी पुराणों के माहात्म्य के समान विधिपरक ढंग से वर्णित हुआ है, जिसे पढ़कर इतिहास—पुराण में कौन श्रेष्ठ है? इस विषय का अनुमान नहीं लग पाता । किन्तु पुराणों का माहात्म्य व्यतिरेक या निषेधपरक ढंग से भी वर्णित हुआ है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों का गौरव इतिहास से बढ़कर है।

श्री नारदीय पुराण में वर्णित है—

**पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ।
सुदान्तोऽपि सुशान्तोऽपि न गतं क्वचिदाप्नुयात् ।।**

‘इन्द्रिय संयमी और सुशान्त होकर भी जो व्यक्ति पुराणों को वेदों से निम्न व भिन्न मानकर उनकी अवज्ञा करता है, वह पशुयोनि को प्राप्त करता है और कभी भी उत्तमगति प्राप्त नहीं कर सकता।’

श्रीपद्मपुराण में शिव-उमा संवाद में वर्णित है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थञ्च भामिनी ।

पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्य्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥

‘हे भामिनी! वेदार्थ से अधिक महत्त्व पुराणार्थ का है, जो व्यक्ति पुराणों को वेदों की अपेक्षा महत्त्वहीन समझकर उनकी अवज्ञा करता है, उसे पशु योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है।’

अतः स्पष्ट है कि पुराणों की अवज्ञा करने पर अधोगति होती है; किन्तु इतिहास की अवज्ञा करने पर अधोगति होती है; ऐसा उल्लेख उपलब्ध न होने से पुराणों का गौरव ही अधिक सिद्ध होता है।

अन्ततः निष्कर्ष यह निकलता है कि चार वेदों से अधिक उत्कर्ष पंचम वेद इतिहास-पुराण का स्थापित हुआ है और इतिहास-पुराण में भी पुराणों का अधिक उत्कर्ष स्थापित हुआ है।

4) वेदों का नित्यत्व, अपौरुषेयत्व, विभाजन व संक्षिप्तीकरण-

जिस प्रकार चार वेद अपौरुषेय हैं, उसी प्रकार पाँचवा वेद इतिहास-पुराण भी अपौरुषेय है, क्योंकि चार वेदों सहित

पाँचवा वेद भी सर्वप्रथम परमात्मा श्री नारायण के निःश्वास से आविर्भूत होता है। ये पाँचों वेद सृष्टि के प्रारम्भ में श्री ब्रह्मा के हृदय में श्री भगवान् के संकल्प मात्र से आविर्भूत होते हैं, जैसा कि श्रीमद्भागवत (1-1-1) में कहा गया है—

‘तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये’ अर्थात् ‘श्री भगवान् ने आदि कवि श्री ब्रह्मा के हृदय में वेद ज्ञान का संचार किया।’ यहाँ ब्रह्म का अर्थ वेद है और वेद का तात्पर्य भी मूल वेद से है; क्योंकि प्रारम्भ में एक ही वेद होता है, उसी में पाँचों वेद संयुक्त रहते हैं। श्री ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं, जिसकी अवधि पृथ्वीलोक के एक हजार चतुर्युग के समान होती है। कल्प के बराबर ही श्री ब्रह्मा की रात्रि होती है। श्री ब्रह्मा के दिन के समय सृष्टि चलती है और रात्रि के समय प्रलय रहती है। इस प्रकार श्री ब्रह्मा के पूर्ण आयु काल में 36000 बार सृष्टि और प्रलय का क्रम चलता है। बारम्बार प्रलय होने पर भी वेदों का ज्ञान पूर्णतः समाप्त नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में श्री भगवान् श्री ब्रह्मा को वेदज्ञान प्रदान करते रहते हैं—

**कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥
(श्री भा० ११-१४-३)**

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, हे उद्धव!— ‘यह वेदवाणी काल के प्रभाव से प्रलय में विलुप्त हो गयी थी; अतएव जब पुनः सृष्टि का समय आया, तो मैंने इस वेदज्ञान का उपदेश संकल्प मात्र से श्री ब्रह्मा के प्रति किया क्योंकि इसमें मुझसे सम्बन्धित धर्म

ही वर्णित है।’

अतः स्पष्ट है कि वेद ज्ञान प्रलय के समय विलुप्त होने पर भी सृष्टि उत्पत्ति के अवसर पर पुनः प्रकट हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि वेद ज्ञान नित्य है। वेद ज्ञान का अर्थ पाँच वेद ही समझना चाहिये। प्रारम्भ में एक ही वेद होता है, उसी में पाँचों वेद संयुक्तावस्था में रहते हैं; किन्तु कलियुग के मनुष्यों को अल्पबुद्धि वाला जानकर महर्षि वेदव्यास ने उसे विभाजित कर दिया—

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।

चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥

(श्री भा० १—३—२१)

श्री सूत जी ने शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘तत्पश्चात् सत्रहवें अवतार में सत्यवती जी के गर्भ से श्री पराशर मुनि के द्वारा वे भगवान् श्री हरि महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। उस समय मनुष्यों की बुद्धि अल्प जानकर उन्होंने वेदरूपी कल्प वृक्ष की अनेक शाखाएँ बना दी।’

वायुपुराण (६०—१६,१८,२१,२२) में श्री सूत जी कहते हैं—

इतिहासपुराणानां वक्तारं सम्यगेव हि ।

माञ्जैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥

‘जो श्रीनारायण का अवतार होने से भगवान्, ईश्वर व प्रभु हैं, ऐसे श्री वेदव्यास ने मुझे इतिहास और पुराणों का उपयुक्त

वक्ता स्वीकार किया है।’

**एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धाव्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूतस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥**

‘प्रारम्भ में एकमात्र वेद यजुर्वेद था, श्री वेदव्यास जी ने एक वेद को चार भागों में विभाजित कर दिया। उन चार विभागों में चातुर्होत्र कर्मानुसार यज्ञ का विधान निश्चित किया गया।’

**आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
औदगात्रं सामभिश्चैव ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ॥**

‘यजुर्वेद नामक विभाग में अध्वर्यु, ऋग्वेद नामक विभाग में होता, सामवेद नामक विभाग में उद्गाता और अथर्ववेद नामक विभाग में ब्रह्मा के कर्मों का विधान किया।’

चातुर्होत्र कर्म— यज्ञ सम्पन्न करने वाले चार ब्राह्मणों को ऋत्विज कहते हैं।

पहला ऋत्विज ‘ब्रह्मा’ कहलाता है, यह अथर्ववेद का ज्ञाता होता है और यज्ञपर्यवेक्षक का कार्य करता है। दूसरा ऋत्विज ‘उद्गाता’ कहलाता है, यह यज्ञ के अवगुणों व त्रुटियों के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये सामवेद की ऋचाओं का गान करता है, तीसरा ऋत्विज ‘होता’ कहलाता है, जो ऋग्वेद के मन्त्रों से यज्ञ में आहुति डालता है और चौथा ऋत्विज ‘अध्वर्यु’ कहलाता है, जो यजुर्वेद का ज्ञाता होता है और यज्ञवेदी का निर्माण करता है। ये चारों ऋत्विज मिलकर जो यज्ञरूप कर्मसम्पादित करते हैं, उसे चातुर्होत्र कर्म कहते हैं।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिर्द्विजसत्तमाः ।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थ विशारदः ।
यच्छिष्टं तु यजुर्वेदे इति शास्त्रार्थनिर्णयः ॥

“हे द्विजश्रेष्ठों! तत्पश्चात् पुराणार्थ विशारद श्री वेदव्यास जी ने आख्यान, उपाख्यान व गाथाओं को लेकर इतिहास—पुराण का संकलन किया। मूल यजुर्वेद से ऋग्वेदादि चार विभाग पृथक् करने के बाद जो अवशिष्ट अंश बचा, उसे ही इतिहास—पुराण या पंचम वेद नाम दिया गया, यही शास्त्र का अर्थ निर्णय है।”
आख्यान— अपने देखे हुए विषय के वर्णन को आख्यान कहते हैं।

उपाख्यान— परम्परा क्रम से सुने हुए विषय के वर्णन को उपाख्यान कहते हैं।

गाथा— पूर्व में सुनाये जा चुके इतिहास विषयक संवाद को गाथा कहते हैं।

आख्यान, उपाख्यान व गाथा— ये तीनों विषय इतिहास पुराणों में श्री वेदव्यास रचित होने से कोई यह सोच सकता है कि इतिहास पुराण पौरुषेय है, किन्तु इतिहास पुराण अपौरुषेय ही है, क्योंकि वेदव्यास जी भगवान् के अवतार हैं।

भगवान् श्री वेदव्यास की महिमा नाना शास्त्रों में वर्णित है।
यथा—

श्री विष्णु पुराण (3—4—5) का कथन है—

कृष्णद्वैपायनंव्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
कोऽन्यो हि भुवि मैत्रेय! महाभारतकृद्भवेत् ॥

श्री पराशर मुनि ने श्री मैत्रेय मुनि के प्रति कहा—
'हे मैत्रेय! तुम कृष्णद्वैपायन व्यास को प्रभु श्री नारायण का
अवतार ही जानो। इस पृथ्वी पर उनके अतिरिक्त और कौन
ऐसा है जो श्री महाभारत शास्त्र रच सके?'
इसी प्रकार महाभारत में लिखित है—

**कृष्णद्वैपायनव्यासं विद्धि नारायणं भुवि ।
को ह्यन्यः पुरुषव्याघ्र महाभारतकृद् भवेत् ॥**
(मोक्षधर्मपर्व 346—12)

श्री वैशम्पायन ने श्री जनमेजय के प्रति कहा—
'हे पुरुषव्याघ्र! तुम इस पृथ्वी पर कृष्णद्वैपायन व्यास को श्री
नारायण का अवतार ही समझो। उनके अतिरिक्त इस
महाभारत शास्त्र की रचना और कौन कर सकता है?'
महर्षि श्री वेदव्यास अवतार का कारण स्कन्दपुराण में वर्णित
है—

**नारायणाद्विनिष्पन्नं ज्ञानं कृतयुगे स्थितम् ।
किञ्चितदन्यथा जातं त्रेतायां द्वापरेऽखिलम् ॥**

'सतयुग में श्री नारायण द्वारा प्रकटित ज्ञान सम्पूर्णता के साथ
विद्यमान था, किन्तु त्रेता व द्वापर युग में उसका कुछ अन्यथा
रूप हो गया ।'

**गौतमस्य ऋषेः शापाज्ज्ञाने त्वज्ञानतां गते ।
संकीर्णबुद्धयो देवा ब्रह्म रुद्र पुरः सराः ॥
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ।
तैर्विज्ञापितकार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः ॥**

**अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात् ।
उत्सन्नान् भगवान् वेदानुज्जहार हरिः स्वयम् ।।**

‘श्री गौतम ऋषि के शाप से जब ज्ञान भी अज्ञान द्वारा आवृत्त हो गया, तब श्री ब्रह्मा—रुद्र आदि देवगण सम्पूर्ण विश्व को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में संकीर्ण बुद्धि जानकर शरणागतपालक व निर्विकार भगवान् श्री नारायण की शरण में गये और फिर उनके समक्ष विश्व की समस्या रखी । इसी कारण से वे भगवान् पुरुषोत्तम श्री हरि स्वयं ही श्री पराशर व सत्यवती के संयोग से महायोगी श्री वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण हुए और तब उन्होंने विलुप्त वेद ज्ञान (इतिहास—पुराण एवं चार वेद) का उद्धार किया ।’

वाराहपुराणोक्त श्री गौतम शाप का आख्यान—

श्री गौतम ऋषि एक वरदान से सम्पन्न थे, जिसके कारण वे नित्य प्रति विपुल मात्रा में अन्न—धान्य उत्पन्न कर देते थे । एक समय अकाल पड़ने से ब्राह्मणों के समक्ष भोजन का संकट उपस्थित हो गया । तब श्री गौतम ऋषि ने सभी ब्राह्मणों को अपने आश्रम के निकट उनके आवास व भोजनादि की व्यवस्था की । अकाल समाप्त होने पर सभी ब्राह्मणों ने अपने—अपने घर वापस जाने की अनुमति माँगी, किन्तु श्री गौतम ऋषि ने किसी को भी घर वापस जाने की अनुमति नहीं दी । ब्राह्मणों ने यह प्रयास बार—बार किया, फिर भी उन्हें वापस घर जाने की अनुमति नहीं मिली । तब सभी ब्राह्मणों को एक युक्ति सूझी, उन्होंने वैदिक ज्ञान और तप के बल से एक माया रचित गाय को श्री गौतम ऋषि के मार्ग में खड़ा कर दिया; जिससे कि उस गाय का ऋषि के साथ अंग स्पर्श हो ।

और जैसे ही श्री गौतम ऋषि द्वारा उस गाय का स्पर्श हुआ, वह तुरन्त गिरकर मर गयी। तब सभी ब्राह्मणों ने श्री गौतम ऋषि को गौ हत्यारा कहना शुरू कर दिया और इसी बहाने से बिना अनुमति लिये ही अपने-अपने घरों को चले गये। तत्पश्चात् श्री गौतम ऋषि जैसे ही गौहत्या का प्रायश्चित्त करने के लिये उद्यत हुए, तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह गाय तो ब्राह्मणों ने माया द्वारा रचकर खड़ी कर दी थी। तब उन्होंने अपने प्रति ब्राह्मणों का छल जानकर यह शाप दिया कि 'समस्त ब्राह्मणों का वैदिक ज्ञान विलुप्त हो जाये'। इसी शाप के कारण सर्वप्रथम समस्त ब्राह्मणों का और फिर समस्त विश्व समुदाय का ज्ञान अज्ञान से आवृत होने के कारण विलुप्त हो गया। तब श्री ब्रह्मादि देवगण विश्व पर आये संकट का निवारण पूछने के लिये श्रीनारायण की शरण में गये थे। तब देवों की प्रार्थना सुनकर श्रीनारायण ने महर्षि श्री वेदव्यास का अवतार ग्रहण किया।

अतः महर्षि वेदव्यास कोई सामान्य ऋषि नहीं अपितु श्री नारायण के अवतार हैं, ईश्वरस्वरूप हैं।

पद्मपुराण में श्री वेदव्यास जी की सर्वज्ञता के विषय में वर्णित है—

**द्वैपायनेन यद्बुद्धं ब्रह्माद्यैस्तन्न बुध्यते।
सर्व-बुद्धं स वै वेद तद्बुद्धं नान्यगोचरम्॥**

‘श्रीकृष्ण द्वैपायन श्री वेदव्यास जी को जो ज्ञान था, वह ज्ञान श्री ब्रह्मादि देवगणों को भी नहीं था। जो ज्ञान अन्य सभी को था, वह श्री वेदव्यास जी को भी था, किन्तु जो ज्ञान श्री वेदव्यास जी को था; वह अन्य किसी को नहीं था।’

स्कन्दपुराण में भी कहा गया है—

**व्यासचितस्थिताकाशादवच्छिन्नानि कानिचित् ।
अन्ये व्यवहरन्त्येतान्युरीकृत्य गृहादिव ॥**

‘जिस प्रकार सांसारिक मनुष्य घरेलू वस्तुओं के द्वारा आदान-प्रदान रूपी व्यवहार किया करते हैं; उसी प्रकार श्रीवेदव्यास जी के हृदयाकाश से उत्पन्न वैदिक शास्त्रों द्वारा विद्वान् लोग अध्ययन-अध्यापन रूपी व्यवहार किया करते हैं।’
अतः संसार में समस्त वैदिक ज्ञान श्रीवेदव्यास जी द्वारा ही प्रकट है।

वेद-पुराण के विभाजन व संक्षिप्तीकरण के विषय में शिवपुराण वायवीय संहिता (1-33, 34) में वर्णित है—

**संक्षिप्य चतुरो वेदांश्चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः ।
व्यस्तवेदतया ख्यातो वेदव्यास इतिस्मृतः ॥**

‘भगवत् अवतार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने विस्तृत व परस्पर संयुक्त चार वेदों को संक्षिप्त और चार भागों में पृथक् कर दिया। वेदों का इस प्रकार विभाग करने से ही उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ।’

**पुराणमपि संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ।
अद्याप्यमर्त्यलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥**

‘आज तक भी ब्रह्मलोक में सौ करोड़ श्लोक संख्यक पुराण विराजमान है, इसी विराट पुराण को श्री वेदव्यास जी ने चार लाख श्लोकों में विभक्त व संक्षिप्त कर दिया।’
मत्स्य पुराण में श्री भगवान् का कथन है—

**कालेनाग्रहणं मत्वा पुराणस्य द्विजोत्तमाः ।
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे—युगे ॥**

‘हे द्विजोत्तम जनों! काल के प्रभाव से ही मनुष्य में पुराण को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं रहती, इस बात को जानकर ही मैं प्रतियुग श्री वेदव्यास के रूप में अवतरित होकर विशाल पुराण को संक्षिप्त करता हूँ।’

श्री विष्णुपुराण (3—4—2,3,5) में वर्णित है—
**ततोऽत्र मत्सुतो व्यासः अष्टाविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत् प्रभु ॥**

श्री पराशर मुनि कहते हैं—
‘वैवस्वत मन्वन्तर के अष्टादशवें द्वापर युग में मेरे पुत्र प्रभु श्री वेदव्यास ने कलियुग के मनुष्यों की अल्प बुद्धि जानकर चतुष्टयात्मक एक वेद को चार भागों में विभक्त कर दिया था।’

**यथाऽत्र तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्तैर्व्यासैरन्यैस्तथा मया ॥**
‘जिस प्रकार बुद्धिमान श्री वेदव्यास द्वारा एक वेद पृथक्—पृथक् चार भागों में विभक्त हुआ है, उसी प्रकार अन्यान्य समस्त व्यासगण और मैं भी श्रीवेदव्यास का अनुसरण करते हुए वेद का विभाजन करते हैं।’

**तदनेनैव व्यासानां शाखाभेदान् द्विजोत्तम ।
चतुर्युगेषु रचितान् समस्तेष्ववधारय ॥**
‘हे द्विजोत्तम! आप यह जान लीजिये कि मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायन

की भाँति ही अन्यान्य चतुयुगों के व्यासगण भी कलियुग में मनुष्यों की अल्प-बुद्धि जानकर वेदों की नाना शाखाओं की रचना किया करते हैं।’

अन्ततः निष्कर्ष यह निकलता है कि चार वेद, इतिहास व पुराण का नित्यत्व है। महर्षि श्री वेदव्यास द्वारा संकलन होने पर भी इनका अपौरुषेयत्व है, क्योंकि वे भगवान् के अवतार हैं। और श्री वेदव्यास द्वारा इनका विभाजन व संक्षिप्तीकरण किया जाता है, ताकि कलियुग के अल्पबुद्धि मनुष्य इनसे लाभान्वित हो सकें।

5) पुराणों के प्रकार एवं तारतम्यता

श्रीमद्भागवत (12-7-23,24) के अनुसार पुराणों की संख्या अठारह मानी गयी है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडं।

नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।

वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥

‘ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण— यह अठारह पुराण है।’

श्रीमद्भागवत (12-13-4,5,6,7,8,9) में 18 पुराणों की श्लोक संख्या भी वर्णित है—

ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च ।
 श्री वैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥
 दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशति ।
 मार्कण्डं नव बाह्वं च दशपञ्च चतुःशतम् ॥
 चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ।
 दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशैव तु ॥
 चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ।
 स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥
 कौर्म सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ।
 एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥
 एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।
 तत्राष्टदशसाहस्रं श्रीभागवतं इष्यते ॥

'ब्रह्मपुराण में 10000, पद्मपुराण में 55000, विष्णुपुराण में 23000 और शिवपुराण में 24000 श्लोक हैं। श्रीमद्भागवत में 18000, नारदपुराण में 25000, मार्कण्डेयपुराण में 9000 और अग्निपुराण में 15400 श्लोक हैं। भविष्यपुराण में 14500, ब्रह्मवैवर्तपुराण में 18000 और लिंगपुराण में 11000 श्लोक हैं। वाराहपुराण में 24000, स्कन्दपुराण में 81100 और वामनपुराण में 10000 श्लोक हैं। कूर्मपुराण में 17000, मत्स्यपुराण में 14000, गरुड़पुराण में 19000 और ब्रह्माण्डपुराण में 12000 श्लोक हैं। इस प्रकार समस्त पुराणों की कुल श्लोक संख्या चार लाख होती है। इनमें से 18000 श्लोक श्रीमद्भागवत के कहे जाते हैं।'

इसी प्रकार वाराह पुराण में भी 18 पुराणों के नाम वर्णित है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं तथा ॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्म पञ्चदशं तथा ।
मात्स्यं च गरुडं चैव ब्रह्माण्डाष्टदशं तथा ॥

‘ब्रह्मपुराण पहला, पद्मपुराण दूसरा, विष्णुपुराण तीसरा, शिवपुराण चौथा, श्रीमद्भागवतपुराण पाँचवाँ, नारदपुराण छठा और मार्कण्डेयपुराण सातवाँ है। अग्निपुराण आठवाँ, भविष्यपुराण नवाँ, ब्रह्मवैवर्तपुराण दसवाँ और लिंगपुराण ग्यारहवाँ है, वाराह पुराण बारहवाँ, स्कन्दपुराण तेरहवाँ, वामनपुराण चौदहवाँ, कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ, मत्स्यपुराण सोलहवाँ, गरुडपुराण सत्रहवाँ और ब्रह्माण्डपुराण अठारहवाँ है।’

पुराणों के नामकरण का कारण :-

अठारह पुराणों में ब्रह्म, अग्नि, स्कन्द, गरुडादि नामों की ख्याति है। नाम सुनकर यह भ्रम हो सकता है कि जो-जो पुराण जिस-जिस नाम से प्रसिद्ध है, वह नाम उस पुराण के रचियता का होगा; किन्तु ऐसा नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ में जिस पुराण का जो प्रथम अध्यापक होता था, उसी अध्यापक के नाम से उस पुराण की ख्याति हो गई। अतः पुराणों के नाम मुख्यतः उनके अध्यापकों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे कठोपनिषद् का नाम इसके प्रथम अध्यापक ‘कठ’ के नाम पर विख्यात हुआ है। इसके अतिरिक्त पुराणों में उपक्रम से लेकर उपसंहार तक विषयों का क्रमिक निबन्धन जिस व्यक्ति ने

किया है, उसी के नाम पर भी उस पुराण का नामकरण हुआ है। पुराणों का कोई रचियता नहीं है, ये अपौरुषेय हैं। महर्षि श्रीवेदव्यास ने तो केवल इनका संक्षिप्तीकरण ही किया है।

पुराणों के त्रिविध भेद :-

यद्यपि समस्त अठारह पुराण वेदात्मक हैं, शब्द प्रमाण है और वेदभाष्य स्वरूप है; तथापि आधुनिक अल्पबुद्धि के लोगों के लिये पुराणों का तात्पर्य निर्णय करना भी अत्यन्त कठिन कार्य है; क्योंकि पुराणों में नाना देवताओं की महिमा व उपासना विधि वर्णित है। पुराणों में देवताओं की अतिशय महिमा को पढ़कर अल्पबुद्धि व्यक्ति परतत्त्व परमेश्वर के विषय में दिग्भ्रमित हो जाते हैं। इस प्रकार उपास्य विषयक संशय क्रमशः अधिकाधिक जटिल होता चला जाता है। इस संशय का निवारण पुराणों की प्रकृति ज्ञात होने पर सम्भव है। अठारह पुराणों में जो-जो पुराण सात्त्विक कल्प कथामय हैं, उनमें सात्त्विक आख्यान होने से वे श्रीविष्णु की महिमा के प्रतिपादक हैं। जो-जो पुराण राजसिक कल्प कथामय हैं, उनमें राजसिक आख्यान होने से वे श्री ब्रह्मा की महिमा के प्रतिपादक हैं और जो-जो पुराण तामसिक कल्प कथामय हैं, उनमें तामसिक आख्यान होने से वे श्री शिव, श्री दुर्गा व श्री अग्नि की महिमा के प्रतिपादक हैं। इसी प्रकार जो-जो पुराण या उपपुराण सत्त्व-रज-तम मिश्रित कल्प कथामय हैं, उनमें मिश्रित आख्यान होने से वे श्री सरस्वती व पितृगणों की महिमा के प्रतिपादक हैं। इस विषय में मत्स्य पुराण से दो श्लोक प्रमाणस्वरूप दिये जा रहे हैं—

सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥

(म०पु०, 53—67)

‘सात्त्विक कल्पों से युक्त पुराणों में श्रीहरि की महिमा अधिक प्रतिपादित हुई है और राजसिक कल्पों से युक्त पुराणों में श्री ब्रह्मा की महिमा अधिक जाननी चाहिये।’

तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाञ्च निगद्यते ॥

(म०पु०, 53—68)

‘उसी प्रकार तामसिक कल्पों से युक्त पुराणों में श्री अग्नि, श्री शिव व श्री दुर्गा जी की महिमा अधिक वर्णित है और सत्त्व—रज—तम मिश्रित कल्पकथामय पुराणों में श्री सरस्वती व पितृगणों की महिमा अधिक वर्णित है।’
अठारह पुराणों में छः पुराण सात्त्विक हैं, छः राजसिक और छः ही तामसिक हैं। मत्स्य पुराण में ही पुराणों के त्रिविध भेद का निरूपण किया गया है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभे ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥

‘विष्णुपुराण, नारदपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, गरुडपुराण, पद्मपुराण व वाराहपुराण— ये छः सात्त्विक पुराण हैं।’

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्म्यं राजसानि निगद्यते ॥

‘ब्रह्माण्डपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, भविष्यपुराण, वामनपुराण और ब्रह्मपुराण— ये छः पुराण राजसिक हैं।’

मात्स्यं कूर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयकं तथैतानि तामसानि निगद्यते ॥

‘मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, लिंगपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण
और अग्निपुराण— ये छः तामसिक पुराण हैं ।’

पुराणों में तारतम्यता :-

तारतम्यता का अर्थ होता है— एक दूसरे की तुलना में घटकर
या बढ़कर होने का भाव । सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण में
परस्पर तारतम्यता है ।

श्रीमद्भगवद्गीता (14—17) में उल्लेख है—

सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥

‘सतोगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद,
मोह व अज्ञान उत्पन्न होता है ।’

अतः ज्ञानोत्पादक होने से सतोगुण अन्य दोनों गुणों से श्रेष्ठ
है ।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत(1—2—24) में कहा गया है—

पार्थिवाद्धारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥

‘जिस प्रकार पृथ्वी के विकार काष्ठ से श्रेष्ठ उसका धूम्र है और
धूम्र से श्रेष्ठ अग्नि है, क्योंकि अग्नि से वेदोक्त यज्ञादि

सम्पादित होते हैं; उसी प्रकार तमोगुण से रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुण से भी श्रेष्ठ है सतोगुण, क्योंकि वह ब्रह्मसाक्षात्कार कराने वाला है।’

अतः सतोगुण ब्रह्मसाक्षात्कार में सहायक होने से तमोगुण व रजोगुण से श्रेष्ठ सिद्ध होता है। त्रिगुणों की तारतम्यता के अनुरूप ही त्रिविध पुराणों में भी तारतम्यता है। विश्वगुरु श्रील जीवगोस्वामीपाद जी श्री तत्त्वसंदर्भ अनुच्छेद नौ में लिखते हैं—

“सात्त्विकमेव पुराणादिकं परमार्थ—ज्ञानाय प्रबलमत्यायातम्”

अर्थात् ‘सात्त्विक पुराण ही परमार्थ तत्त्व परमेश्वर के ज्ञान की प्राप्ति में प्रबल प्रमाण सिद्ध होते हैं।’

क्योंकि सतोगुण ब्रह्म या परमार्थ तत्त्व का साक्षात्कार कराने में प्रबल सहायक है, इसीलिये परमार्थ तत्त्व के जिज्ञासुओं के लिये सात्त्विक पुराणों का प्रमाण राजसिक व तामसिक पुराणों से बढ़कर है। प्रश्न उठता है कि क्या राजसिक व तामसिक पुराणों को परमार्थ तत्त्व के निर्णय में उपयोग नहीं करना चाहिये ? इस प्रश्न का उत्तर स्कन्द पुराण के शिव—कार्तिकेय संवाद में प्राप्त होता है—

शिवशास्त्रेषु तदग्राह्यं भगवच्छास्त्रयोगि यत्।

परमो विष्णुरेवैकस्तज्ज्ञानं मोक्षसाधनम्।

शास्त्राणां निर्णयस्त्वेषस्तदन्यन्मोहनाय हि॥

श्री शिव ने श्री कार्तिकेय के प्रति कहा—

‘शिव महिमा प्रतिपादक शास्त्रों में से उन्हीं अंशों को ग्रहण करना चाहिये, जो भगवान् श्री हरि की महिमा प्रतिपादक शास्त्रों के अनुकूल हो; क्योंकि एकमात्र विष्णु ही अन्यान्य

समस्त देवों सहित त्रिदेवों में भी श्रेष्ठ हैं और श्री विष्णुपरक ज्ञान ही मोक्षप्राप्ति का साधन है। शास्त्रों का यही निर्णय है और इस निर्णय की उपेक्षा करने पर निश्चय ही मोहग्रस्त होना होगा।'

इसी प्रकार राजसिक व मिश्र पुराणों में से भी वही अंश स्वीकार करना चाहिये जो सात्त्विक पुराणों के अनुकूल हो। यह नियम स्मृति व आगम शास्त्रों पर भी लागू होता है। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करके राजसिक—तामसिक आदि शास्त्रों को भी सर्वांश में प्रमाणस्वरूप स्वीकार करेगा तो वह निश्चय ही परमार्थ तत्त्व के विषय में दिग्भ्रमित व मोहग्रस्त हो जायेगा। वर्तमान में ऐसा ही हो रहा है। अल्पज्ञ लोग राजसिक व तामसिक पुराणों के ऐसे अंश या आख्यान को, जो श्री विष्णु महिमा प्रतिपादक शास्त्रों के प्रतिकूल होते हैं; पढ़-सुनकर उपास्य तत्त्व के विषय में मोहग्रस्त बने हुए हैं। ऐसे मोहग्रस्त दिग्भ्रमित अल्पज्ञों को परमार्थ तत्त्व का बोध कराना तब तक असम्भव है, जब तक कि वे सात्त्विक पुराणों को राजसिक तामसिक पुराणों से अधिक श्रेष्ठ स्वीकार नहीं कर लेते।

6) सर्व वेद-इतिहास-पुराण अर्थ निर्णायक शास्त्र की आवश्यकता

यद्यपि यह सिद्ध किया जा चुका है कि सात्त्विक पुराण ही परमार्थ तत्त्व का बोध कराने में प्रबल सहायक है, फिर भी राजसिक व तामसिक पुराणों के अनुयायी सात्त्विक पुराणों की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते। इसका कारण यह है कि राजसिक व तामसिक पुराणों के भाष्यकार अनेकानेक विपरीत

युक्तियों के बल पर उन्हीं पुराणों द्वारा प्रतिपादित उपास्यों को परमार्थ तत्त्व के रूप में निरूपण करते रहते हैं। अतः परमार्थ तत्त्व या परम उपास्य सम्बन्धी समस्या यथावत बनी रहती है। इस समस्या का समाधान महर्षि श्री वेदव्यास कृत ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र द्वारा हो सकता है, क्योंकि महर्षि ने ब्रह्मसूत्र का प्रणयन परमार्थ तत्त्व के विषय में समस्त वेद-इतिहास पुराणों के अर्थों का निर्णय करने के लिये ही किया था। किन्तु ब्रह्मसूत्र को सांख्य-न्यायादि दर्शनों के अनुयायी अर्वाचीन या आधुनिक जानकर महत्त्व ही नहीं देते। षट् दर्शनों-योग-सांख्य-न्याय-वैशेषिक-मीमांसा-वेदान्त में से वेदान्त दर्शन ही सबसे बाद में अस्तित्व में आया है, अतः इसे अर्वाचीन जानकर प्राचीन दर्शनों के मतावलम्बी वेदान्त दर्शन को परमार्थ तत्त्व निर्णय में अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। फिर भी भारतवर्ष में परमार्थवेत्ताओं का एक ऐसा वर्ग हजारों वर्षों से अस्तित्व में है, जो वेदान्त दर्शन के अनुयायी है और वेदान्ती कहलाते हैं। ये वेदान्ती ब्रह्मसूत्र को सर्वोच्च प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। यह ब्रह्मसूत्र अल्पाक्षरों में रचित और अत्यन्त गूढ़ अर्थों वाला है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मसूत्र को समझने के लिये भी भाष्य की आवश्यकता होती है। ब्रह्मसूत्र के जितने भाष्य वर्तमान में उपलब्ध हैं, प्रायः वे सभी भिन्न भिन्न अभिप्राय वाले हैं। भाष्यकारों ने अपने अपने मत को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये ब्रह्मसूत्र के विभिन्न अर्थ प्रकाशित कर दिये हैं। भाष्यकारों ने ऐसा इसलिये किया है, क्योंकि जब तक किसी भाष्यकार आचार्य का मत ब्रह्मसूत्र द्वारा प्रमाणित नहीं हो जाता, तब तक विद्वान लोग उस मत को प्रामाणिक मत के रूप में स्वीकार नहीं करते। अतः अपने अपने मतों को प्रामाणिक बनाने के स्वार्थ ने भाष्यकारों से ब्रह्मसूत्र के भिन्न भिन्न व

विरोधी अर्थ वाले भाष्य लिखवा दिये हैं। इस प्रकार ब्रह्मसूत्र के द्वारा भी परमार्थ तत्त्व के निर्णय की समस्या का समाधान सरल नहीं है, यद्यपि ब्रह्मसूत्र समस्त वेदों, उपनिषदों, इतिहास व पुराणों का अर्थ निर्णायक शास्त्र है। यदि ब्रह्मसूत्र का अकृत्रिम या वास्तविक भाष्य उपलब्ध हो जाये तो इस समस्या का समाधान सरल हो जायेगा। विश्वगुरु श्रील जीवगोस्वामीपाद जी श्री तत्त्व संदर्भ के नवें अनुच्छेद में लिखते हैं

**“यद्येकतममेव पुराणलक्षणमपौरुषेयं शास्त्रं
सर्ववेदेतिहासपुराणानामर्थसारं ब्रह्मसूत्रोपजीव्यञ्च भवद्भुवि
सम्पूर्णं प्रचरदरूपं स्यात्”**

अर्थात् ‘ऐसा कोई एक शास्त्र होना चाहिये जिसमें पुराण के लक्षण हो, जो अपौरुषेय हो, समस्त वेद—इतिहास—पुराण के अर्थों का सार हो और ब्रह्मसूत्र के अकृत्रिम भाष्य के रूप में पृथ्वी तल पर सर्वत्र प्रचारित हो।’

ऐसा एकमात्र शास्त्र श्रीमद्भागवत ही है, जिसमें पुराण के लक्षण हैं, जो स्वयं श्री भगवान् के श्री मुख से चतुःश्लोकी भागवत रूप में उपदिष्ट होने से और भगवत् अवतार महर्षि कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यास द्वारा आविर्भूत होने से अपौरुषेय है। समस्त वेद, इतिहास व पुराणों के अर्थों का सार भी है और ब्रह्मसूत्र के अकृत्रिम भाष्य के रूप में विश्वभर में विख्यात है। हमारे श्री गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने तो ब्रह्मसूत्र के किसी भी भाष्य को शुद्ध नहीं माना और न ही स्वयं भाष्य लिखा व न ही अपने अनुयायियों को भाष्य लिखने के लिये प्रेरित किया। श्री चैतन्यमहाप्रभु ने

श्रीमद्भागवत को ही ब्रह्मसूत्र का अकृत्रिम भाष्यस्वरूप स्वीकार किया है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत वेदान्ताचार्य प्रकाशानन्द सरस्वती के प्रति काशीपुरी में कहा था—

**येइ सूत्रकर्ता, से यदि करये व्याख्यान।
तबे सूत्रे मूल अर्थ लोकेर हय ज्ञान॥**
(श्री चै० च० २-२५-९३)

‘यदि ब्रह्मसूत्र की व्याख्या ब्रह्मसूत्र के प्रणयनकर्ता स्वयं महर्षि श्री वेदव्यास करें, तभी ब्रह्मसूत्र के मूल अर्थों को अन्य लोग जान सकते हैं।’

**चारि वेद उपनिषदे यत किछु हय।
तार अर्थ लजा व्यास करिला सञ्चय॥**
(श्री चै० च० २-२५-९४)

‘महर्षि श्री वेदव्यास ने चार वेदों व उपनिषदों के सार तत्त्व को ब्रह्मसूत्र के रूप में संचित कर लिया है।’

**येई सूत्रे येइ ऋक्-विषय-वचन।
भागवते सेइ ऋक्श्लोके निबन्धन॥**
(श्री चै० च० २-२५-९९)

‘वेद—उपनिषद में जो जो परतत्त्व या परमार्थ तत्त्व निर्णायक मन्त्र हैं, वही वही वेदान्त सूत्र में सूत्र रूप में संकलित है और श्रीमद्भागवत में वही सब मन्त्र व सूत्र श्लोकों के रूप में संकलित हैं।’

अतएव ब्रह्मसूत्रेण भाष्य श्री भागवत ।
भागवत श्लोक, उपनिषद कहे एक अर्थ ।।
(श्री चै० च० २-२५-१००)

‘अतः श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्र का अकृत्रिम भाष्य है और उपनिषद मन्त्रों का जो तात्पर्य है, वही श्रीमद्भागवत के श्लोकों का भी तात्पर्य है ।’

यद्यपि श्रीमद्भागवत के अर्थ स्वतः स्पष्ट है, फिर भी उन्हें सुस्पष्ट करने के लिये वैष्णव विद्वानों ने अनेकानेक विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी हैं । वे टीकाएँ या व्याख्या इतनी बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं कि उन्हें देखकर तो यही प्रतीत होता है मानो श्रीमद्भागवत एक पृथक् सातवाँ दर्शन है—भागवत दर्शन । यद्यपि श्रीमद्भागवत स्वाभाविक रूप से महर्षि वेदव्यासकृत छठे वेदान्त दर्शन का भाष्य है, किन्तु श्रीमद्भागवत की टीकाओं की विपुल संख्या से यह स्वतंत्र सातवाँ दर्शन ही दिखता है । इतनी टीकाएँ तो ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शन की भी नहीं, जितनी श्रीमद्भागवत की उपलब्ध है । श्री गौड़ीय वैष्णव तत्त्वाचार्य विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामी पाद जी ने श्रीमद्भागवत पर आधारित एक अनुपम दर्शन शास्त्र लिखा है, जिसे श्री भागवत सन्दर्भ कहते हैं । यह छः भागों में विभाजित है— श्री तत्त्वसन्दर्भ, श्री भगवत्सन्दर्भ, श्री परमात्मसन्दर्भ, श्री कृष्णसन्दर्भ, श्री भक्तिसन्दर्भ और श्री प्रीतिसन्दर्भ । छः भागों में विभक्त होने यह श्रीषट्सन्दर्भ के नाम से भी विख्यात है । इस श्री भागवत सन्दर्भ के समान परमार्थ तत्त्व निरूपक अन्य कोई भी दर्शन शास्त्र इस भूतल पर विद्यमान नहीं है । यह अनुपम दर्शन शास्त्र श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों की ही युक्तियुक्त

व्याख्या करता है। अतः श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्री भागवत सन्दर्भ का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

7) सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवत

विश्वगुरु श्रील जीवगोस्वामीपाद जी श्री तत्त्वसंदर्भ के अनुच्छेद दस में लिखते हैं—“यस्मिन्नेव सर्वशास्त्रसमन्वयो दृश्यते” अर्थात् ‘उस श्रीमद्भागवत में ही सर्वशास्त्र समन्वय दिखाई देता है।’

श्रीमद्भागवत में समस्त शास्त्रों का तात्पर्य अर्थ प्रदर्शित होने से एकमात्र यही सर्वशास्त्र शिरोमणि है। चार वेद, छः वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष व छन्द, वेदान्त या 108 उपनिषद, इतिहास—महाभारत व रामायण, 20 स्मृतियाँ या धर्मशास्त्र, षट् दर्शन—योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा व वेदान्त या ब्रह्मसूत्र और 18 पुराण मुख्य रूप से यही वैदिक साहित्य है। इस समस्त वैदिक साहित्य में एकमात्र श्रीमद्भागवत ही सर्वाधिक महिमाशाली शास्त्र है। समस्त वैदिक साहित्य का एकमात्र यही सार—सर्वस्व है।

मत्स्य पुराण का कथन है—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते॥

(म० पु० 53—20)

‘गायत्री का उल्लेख करके जिसमें धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें वृत्रासुर वध वृत्तान्त वर्णित है, वही श्रीमद्भागवत के नाम से जाना जाता है।’

श्रीमद्भागवत(1-1-1) में गायत्री मन्त्र का अर्थ और (1-1-2) में परम धर्म का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार छठे स्कन्ध में वृत्रासुर-वध का वृत्तान्त भी प्राप्त होता है। ये तीनों श्रीमद्भागवत के विशेष लक्षण हैं। गायत्री मन्त्र में समस्त वेदों का संक्षिप्त तात्पर्य निहित है, जिसे श्रीमद्भागवत के प्रथम श्लोक में ही स्थान दिया गया है और भक्ति ही समस्त शास्त्रों का मुख्य अभिधेय या साधन है, जिसे परमधर्म भी कहते हैं; इस परमधर्म को श्रीमद्भागवत के द्वितीय श्लोक में निर्देशित किया गया है। वृत्रासुर ने मृत्यु के समय मुक्ति को भी तिरस्कृत करके एकमात्र भगवत्प्रेम की याचना की थी, जिससे सूचित होता है कि भगवत्प्रेम मुक्ति से बढ़कर है। अतः वृत्रासुर-वध प्रसंग से श्रीमद्भागवत का मुख्य प्रयोजन लक्षित होता है। भगवत्प्रेम ही समस्त शास्त्रों का भी मुख्य प्रयोजन है। इस प्रकार मत्स्य पुराण ने श्रीमद्भागवत में सर्वशास्त्रों का समन्वय दर्शाया है। गरुड़ पुराण में कहा गया है—

**अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ—विनिर्णयः ।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः ॥**

‘यह श्रीमद्भागवत शास्त्र ब्रह्मसूत्रों का अर्थस्वरूप, महाभारत शास्त्र का अर्थनिर्णायक, गायत्री मन्त्र का भाष्यस्वरूप और वेदों के गूढ़तम अर्थ की व्याख्या है।’

**पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवदोदितः ।
द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेदसंयुतः ।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ॥**

‘जिस प्रकार वेदों में सामवेद श्रेष्ठ है, उसी प्रकार यह श्रीमद्भागवत समस्त पुराणों में सर्वश्रेष्ठ है। यह श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् द्वारा कथित है। यह बारह स्कन्धों और सौ प्रकरणों से युक्त है तथा इसमें अठारह हजार श्लोक हैं।’
स्कन्दपुराण और वामन पुराण में उल्लेख है—

**ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्ध—सम्मितः ।
हयग्रीव—ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ॥**

‘जिस ग्रन्थ में अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं, जिसमें नारायण कवच नाम से विख्यात हयग्रीव—ब्रह्मविद्या और वृत्रासुर वध का वृत्तान्त है तथा जिसका शुभारम्भ गायत्री मन्त्र के अर्थ से हुआ है; वही ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के नाम से जाना जाता है।’

पद्म पुराण में वर्णन है—

**पुराणं त्वं भागवतं पठसे पुरतो हरेः ।
चरितं दैत्यराजस्य प्रह्लादस्य च भूपते ॥**

(प० पु० उत्तरखण्ड 22—115)

श्री गौतम ऋषि ने श्री अम्बरीष के प्रति कहा—
‘हे राजन्! जिसमें दैत्यराज हिरण्यकशिपु एवं श्री प्रह्लाद जी का चरित्र है, क्या तुम भगवान् हरि के समक्ष उसी श्रीमद्भागवत पुराण का पाठ किया करते हो?’

पद्म पुराण में ही व्युञ्जली माहात्म्य में वर्णित है—

रात्रौ तु जागरः कार्यः श्रोतव्या वैष्णवी कथा ।

गीता नाम—सहस्रञ्च पुराणं शुक—भाषितम् ।

पठितव्यं प्रयत्नेन हरे सन्तोषकारणम् ॥

‘व्युञ्जली महाद्वादशी की रात्रि में भगवान् की प्रसन्नता के लिये रात्रि जागरणपूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता, श्री विष्णुसहस्रनाम व शुक—संहिता नाम से विख्यात श्रीमद्भागवत महापुराण का पाठ करना चाहिये और वैष्णवी कथा श्रवण करनी चाहिये ।’

स्कन्द पुराण में उल्लेख है—

शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्र—संग्रहैः ।

न यस्य तिष्ठे गेहे शास्त्रं भागवतं कलौ ॥

‘कलियुग में जिसके घर श्रीमद्भागवत शास्त्र विराजमान नहीं है, उसे सैंकड़ों—हजारों अन्यान्य शास्त्रों का संग्रह करने से भी क्या लाभ ?’ अर्थात् एकमात्र श्रीमद्भागवत शास्त्र ही पर्याप्त है, अन्य शास्त्रों की आवश्यकता ही नहीं है ।

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।

गृह न तिष्ठते यस्य स विप्रः श्वपचाधमः ॥

‘कलियुग में जिसके घर श्रीमद्भागवत विराजमान नहीं है, उसे वैष्णव किस प्रकार जाना जा सकता है ? श्रीमद्भागवत शास्त्र से विहीन ब्राह्मण को भी कलिकाल में अधम चाण्डाल ही

जानना चाहिये ।’

**यत्र—यत्र भवेद्विप्र शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र—तत्र हरिर्याति त्रिदशैः सह नारद ॥**

‘हे विप्र नारद! जहाँ—जहाँ कलिकाल में श्रीमद्भागवत शास्त्र विराजमान हैं, वहाँ—वहाँ श्रीहरि देवगणों सहित गमन करते हैं ।’

**य पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने ।
अष्टादशपुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥**

‘हे मुनि! जो मनुष्य एकाग्र मन से नित्यप्रति श्रीमद्भागवत का एक श्लोक भी पढ़ते हैं, उन्हें अठारह पुराणों के पाठ का फल प्राप्त होता है ।’

प्रश्न उठता है कि श्रीमद्भागवत भी तो अठारह पुराणों में से एक पुराण है, फिर श्रीमद्भागवत के प्रतिश्लोक पाठ से सत्रह पुराण सहित श्रीमद्भागवत का फल कैसे प्राप्त होगा? इस सम्बन्ध में एक गूढ़ रहस्य है । रहस्य यह है कि महर्षि वेदव्यास जी ने श्रीमद्भागवत पुराण को दो बार लिखा है ।

मत्स्य पुराण में लिखा है—

**अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः ।
चक्रे भारतमाख्यानं वेदार्थैरुपबृंहितम् ॥**

‘श्री वेदव्यास जी ने अठारह पुराणों के संकलन के पश्चात् वेदार्थ प्रकाशक महाभारत शास्त्र का संकलन किया ।’

मत्स्यपुराण के वचनानुसार महाभारत की रचना से पहले ही अठारह पुराण लिखे जा चुके थे, जिनमें श्रीमद्भागवत भी सम्मिलित था। किन्तु श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि महर्षि श्री वेदव्यास ने वेद के चार भाग करने के बाद महाभारत नामक इतिहास व पुराण लिखे और फिर ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया। इतना कुछ लिखने के बाद भी जब उन्हें आत्मसन्तुष्टि नहीं मिली, तब देवर्षि श्री नारद ने उनको भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का वर्णन करने की प्रेरणा दी और चतुःश्लोकी भागवत का दिव्य ज्ञान भी प्रदान किया। तत्पश्चात् श्री वेदव्यास ने समाधिस्थ होकर भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार किया और जगत कल्याण के लिये श्रीमद्भागवत को आविर्भूत किया।

उर्पयुक्त दोनों विवरणों में परस्पर विरोध है। मत्स्यपुराण के अनुसार अठारह पुराण पहले लिखे जा चुके थे, बाद में महाभारत लिखा गया। किन्तु श्रीमद्भागवत के अनुसार महाभारत के पश्चात् श्रीमद्भागवत का संकलन हुआ। इस विरोधाभास का निराकरण विश्वगुरु श्रीलजीवगोस्वामी पाद जी श्री तत्त्वसन्दर्भ अनुच्छेद 30 में करते हैं—

“प्रथमतः स्वयं संक्षेपेण कृत्वा पश्चात्तु श्रीनारदोपदेशादनुक्रमेण विवृत्येत्यर्थः”

अर्थात् ‘श्रीवेदव्यास ने जब पहली बार महाभारत लिखने से पहले अन्य पुराणों के साथ भी भागवत लिखा था उसमें परमार्थ तत्त्व का ज्ञान संक्षेप में वर्णन किया था, किन्तु श्रीनारद के उपदेश के पश्चात् विषयानुक्रम से विस्तारपूर्वक परमार्थ तत्त्व का वर्णन किया।’

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि महाभारत की रचना से पहले भी अठारह पुराण लिखे जा चुके थे, जिनमें श्रीभागवत भी था और वही श्रीभागवत, महाभारत व ब्रह्मसूत्र के पश्चात् चतुःश्लोकी भागवत के सिद्धान्तों, ब्रह्मसूत्र के भाष्य, गायत्री मंत्र के भाष्य, भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं से समन्वित होकर पुनः आविर्भूत हुआ।

अतः स्कन्द पुराण में जो श्रीमद्भागवत के एक श्लोक के पाठ से अठारह पुराणों का फल प्राप्त होने की बात कही गई है, उसमें यह समझना होगा कि वह एक श्लोक पश्चात् वाली श्रीमद्भागवत का है, जिसका पाठ करने से अठारह पुराणों का फल प्राप्त होता है। इन अठारह पुराणों में जो श्रीमद्भागवत है, वह पहले वाला है; जिसको सत्रह पुराणों के साथ लिखने पर भी श्री वेदव्यास को आत्म सन्तुष्टि नहीं हुई थी। श्रीमद्भागवत (1-3-41) में श्री सूत जी ने श्री शौनकादि मुनियों के प्रति श्रीमद्भागवत शास्त्र को समस्त वेद-इतिहास का सार सर्वस्व बताया है—

**तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ।
सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥**

‘श्रीवेदव्यास ने अपने आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ पुत्र को समस्त वेदों व इतिहासों के सार—संग्रह इस श्रीमद्भागवत को ग्रहण कराया।’

व्याख्या— श्रीमद्भागवत समस्त वेदों और इतिहासों का सारभूत है। इस श्लोक में वर्णित इतिहासानां शब्द से इतिहास ग्रन्थ श्रीवेदव्यास रचित श्रीमहाभारत और श्रीमद्वाल्मीकीय

रामायण जानना चाहिये। श्रीमद्भागवत ही महाभारत व रामायण के अर्थों का निर्णायक व सार है।

महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व (6-93) में उल्लेख है—

**वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिःसर्वत्र गीयते ॥**

‘वेद, रामायण, पुराण और महाभारत में आदि— मध्य व अन्त में सर्वत्र श्री हरि की महिमा ही वर्णित है।’

अतः श्रीहरि की महिमा को ही वेद, रामायण, पुराण व महाभारत का मुख्य तात्पर्य जानना चाहिये। जिस किसी शास्त्र में जिस-जिस स्थान पर श्रीहरि की महिमा का वर्णन है, वही उस ग्रन्थ का तात्पर्य है। श्रीमद्भागवत (3-5-12) में श्री विदुर जी श्री मैत्रेय मुनि के प्रति कहते हैं—

**मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।
यस्मिन्ननृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेःकथायाम् ॥**

‘आपके सखा कृष्णद्वैपायन मुनि श्री वेदव्यास जी ने महाभारत की रचना श्रीभगवान् के गुणानुवाद को उद्देश्य करके ही की है; जिसमें विषय सुखों का वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि को भगवान् की कथाओं में आकर्षित करने का प्रयास किया गया है।’

अतः महाभारत का उद्देश्य करके अन्ततः भगवद्गुणानुवाद व भगवद्कथा ही है। इसी प्रकार श्री रामायण का भी उद्देश्य जानना चाहिये।

महाभारत में भीष्म पर्व अन्तर्गत 25 से लेकर 42 अध्याय तक 18 अध्यायों में श्रीमद्भगवद्गीता और शान्ति पर्व अन्तर्गत मोक्षधर्म उपपर्व में 162 से लेकर 178वें अध्याय तक 17 अध्यायों में नारायणीय उपाख्यान का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में महाभारत में श्री वैशम्पायन श्री जनमेजय के प्रति कहते हैं—

**भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥**

‘भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत रूपी समुद्र का मन्थन करके इस श्रीमद्भगवद्गीता रूपी अमृत सार—सर्वस्व को प्राप्त किया और श्री अर्जुन को इसका पान कराया ।’ अतः महाभारत का सार—सर्वस्व श्रीमद्भगवद्गीता है। इस श्रीमद्भगवद्गीता के समस्त सिद्धान्त श्रीमद्भागवत में ही अन्तर्भुक्त हैं। जो—जो विषय श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित हैं, वे श्रीमद्भागवत में भी उपलब्ध हैं। अतः श्रीमद्भागवत में महाभारत नामक इतिहास का सार—सर्वस्व श्रीमद्भगवद्गीता भी समाविष्ट है। इसी प्रकार नारायणीय उपाख्यान भी महाभारत का सार ही है।

मोक्षधर्म उपपर्व में (170—11,12,13) में श्री जनमेजय ने श्री वैशम्पायन के प्रति कहा—

**इदं शतसहस्राद्धिं भारताख्यानविस्तरात् ।
आमन्थ्य मतिमन्थेन ज्ञानोदधिमनुत्तमम् ॥
नवनीतं यथादध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्य औषधिभ्योऽमृतं यथा ॥**

समुद्धृतमिदं ब्रह्मन् कथामृतमिदं तथा ।
तपोनिधे त्वयोक्तं हि नारायणकथाश्रयम् ॥

‘हे तपोनिधे! आपने लक्ष श्लोकात्मक इस विस्तृत महाभारत रूपी ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ समुद्र को अपनी बुद्धि रूपी मथानी के द्वारा मथकर जो नारायणीय कथाश्रयम या नारायणीय उपाख्यान रूपी कथामृत निकाला है, यह दही से मक्खन, मलय पर्वत से चन्दन, वेदों से आरण्यक—उपनिषद् और औषधियों से अमृत की भाँति निकला है।’

अतः नारायणीय उपाख्यान महाभारत का सार है। इस नारायणीय उपाख्यान में भगवान् श्रीहरि की महिमा का वर्णन है। श्रीमद्भागवत में सर्वत्र श्रीहरि की महिमा का निरूपण होने से यह नारायणीय उपाख्यान भी उसी में अन्तर्भुक्त है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में महाभारत नामक इतिहास का सिद्धान्त सार श्रीमद्भगवद्गीता और कथा सार श्री नारायणीय उपाख्यान दोनों का समावेश है। इतिहास ग्रन्थों के सार की ही भाँति श्रीमद्भागवत में समस्त वेदों का सार भी समाविष्ट है। पद्मपुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य (2—67,68,69,70) में श्री सनकादि मुनियों ने देवर्षि श्री नारद के प्रति कहा है—

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः ॥
आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते यथा ।
स भूयः संपृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥
यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्गव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥
ईक्षणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।

पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ।।

‘श्रीमद्भागवत की कथा वेद और उपनिषदों के सार से निर्मित है, किन्तु यह वेद—उपनिषद से पृथक् उनकी फलस्वरूपा होने के कारण उनसे भी श्रेष्ठ है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ से शाखाओं तक सर्वत्र रस रहने पर भी उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता, किन्तु वही रस जब पृथक् होकर फल के रूप में आ जाता है, तब वह विश्व में सभी को प्रिय लगने लगता है। उसी प्रकार वेद—उपनिषद में जिस चिन्मय रस तत्त्व की स्फूर्ति नहीं है, श्रीमद्भागवत में वह स्वतः स्फूर्त होता है। जिस प्रकार दूध में घी रहने पर उसका अलग से स्वाद नहीं लिया जा सकता, किन्तु दूध से पृथक् होने पर वह देवों के लिये भी आस्वादनीय हो जाता है, उसी प्रकार वेद—उपनिषद में चिन्मय रस रहने पर भी उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता, किन्तु श्रीमद्भागवत में उसका सम्यक् आस्वादन होता है। जिस तरह शर्करा गन्ने में सर्वत्र व्याप्त होकर रहती है, फिर भी गन्ने से अलग होकर शर्करा की मिठास उत्कृष्ट हो जाती है; उसी तरह वेद—उपनिषद में सर्वत्र चिन्मय रस तत्त्व उपस्थित रहने पर भी वह उतना मधुर अनुभूत नहीं होता, जितना कि श्रीमद्भागवत में अनुभूत होता है।’

अतः श्रीमद्भागवत समस्त वेदों का सार सर्वस्व है। महर्षि श्री वेदव्यास ने समस्त वेदों व इतिहासों के सार सर्वस्व श्रीमद्भागवत शास्त्र को आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने पुत्र श्री शुकदेव मुनि को आत्मसात करवाया; जिन्होंने बाद में इसे गङ्गा के तट पर श्री परीक्षित को सुनाया।

श्रीमद्भागवत शास्त्र समस्त वेदों का सार सर्वस्व है; ऐसा उल्लेख स्वयं श्रीमद्भागवत में भी उपलब्ध होता है—

**निगमकल्पतरोगलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुर्हो रसिका भुवि भावुकाः ॥
(श्री भा० १-१-३)**

श्री वेदव्यास कृत मंगलाचरण में कहा गया है—
'हे भगवत्प्रीतियुक्त रसिक जनों! हे अप्राकृत रस की भावना में चतुर भावुक जनों! यह श्रीमद्भागवत वेद रूपी कल्पवृक्ष का परमानन्द स्वरूप परिपक्व फल है। यह छिलका—गुठली आदि त्यागने योग्य अंश से रहित एवं शुद्ध चिन्मय रस स्वरूप तरल होने के कारण कर्णपुटों में भरकर पीने योग्य है। श्री शुकदेव मुनि के मुख से निस्सृत इस अप्राकृत रस स्वरूप फल का मुक्तिपर्यन्त एवं मुक्ति के उपरान्त भी बारम्बार आस्वादन कीजिये।'

**यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
ससारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥
(श्री भा० १-२-३)**

श्री सूत जी ने श्रीशुकदेव जी की स्तुति करते हुए कहा— 'मैं समस्त मुनियों के गुरु उन व्यासनन्दन श्री शुकदेव जी की शरण ग्रहण करता हूँ; जिन्होंने संसार रूपी अज्ञानान्धकार से पार होने के इच्छुक व्यक्तियों के लिये करुणावश आत्मतत्त्व

की अनुभूति कराने वाले, समस्त श्रुतियों के सारस्वरूप और अद्वितीय आध्यात्मिक दीपक सदृश अत्यन्त गोपनीय रहस्यों से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत पुराण का वर्णन किया है।’

**सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥**
(श्री भा० १२-१३-१५)

‘यह श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषदों का सार है, जो इसके अमृतमय भक्ति रस से तृप्त हो जाता है, वह अन्य किसी पुराणादि शास्त्र के प्रति कभी आकर्षित नहीं हो सकता।’ विद्वत्समाज में एक मान्यता प्रचलित है कि ‘वेद स्वतः प्रमाण है और पुराण परतः प्रमाण है।’ अर्थात् पुराण वचनों की प्रामाणिकता वेद वचनों पर आश्रित है। यह बात वैसे तो किसी भी पुराण पर लागू नहीं होती, क्योंकि पुराण वेदात्मक होने से साक्षात् वेद ही है। कदाचित् मान भी लिया जाये की पुराण वेद सापेक्ष है, तो यह मान्यता अन्यान्य पुराणों पर ही लागू होगी श्रीमद्भागवत पर नहीं; श्रीमद्भागवत तो साक्षात् सात्वती श्रुति या वैष्णवी श्रुति है। जैसा की श्रीमद्भागवत में श्रीशौनक ऋषि ने कहा है—

**कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ।
संवादः समभूतात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥**
(श्री भा० १-४-७)

‘हे श्री सूत जी! पाण्डवनन्दन राजर्षि परीक्षित का श्री शुकदेव मुनि के साथ संवाद कैसे हुआ, जिससे इस सात्वती श्रुति श्रीमद्भागवत का कथन हुआ?’
श्रुति का अर्थ है साक्षात् वेद और श्रीमद्भागवत तो सात्वतों या

वैष्णवों का वेद है, जिसमें भक्ति, भक्त और भगवान् का ही माहात्म्य आद्योपान्त परिव्याप्त है। अतः सात्वती श्रुति होने से श्रीमद्भागवत वेदसापेक्ष नहीं। यदि श्रीमद्भागवत में वर्णित कोई विषय वेदों में दृष्ट नहीं होता तो भी वह विषय प्रामाणिक मान्य होगा।

समस्त शास्त्रों में पुराणों का महत्त्व सर्वाधिक है और समस्त पुराणों में श्रीमद्भागवत ही सर्वोपरि है।

श्रीमद्भागवत में श्रीसूत जी के वचन हैं—

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।

यावद् भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरः ।।

(श्री भा० १२-१३-१४)

‘भक्तजनों के मध्य अन्यान्य पुराण तभी तक शोभायमान होते हैं, जब तक भक्ति रस रूपी अमृत के सिन्धु श्रीमद्भागवत को सुन नहीं लिया जाता।’

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ।

वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ।।

(श्री भा० १२-१३-१६)

‘जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, देवों में श्रीविष्णु और वैष्णवों में श्रीशिव सर्वश्रेष्ठ है; उसी प्रकार पुराणों में यह श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ है।’

8) श्रीमद्भागवत की असमोर्ध्व महिमा

वर्तमान कलिकाल में श्रीमद्भागवत की असमोर्ध्व महिमा है अर्थात् न तो किसी अन्य शास्त्र की महिमा श्रीमद्भागवत की महिमा के समान है और न ही अधिक। पञ्चपुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य में वर्णन आता है कि कलिकाल के दुष्प्रभाव से मूर्तिमान ज्ञान-वैराग्य श्री वृन्दावन धाम में वृद्धावस्था को प्राप्त होकर अचेत पड़े थे और उन दोनों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाली मूर्तिमती भक्तिदेवी उनकी इस दुर्दशा से अत्यन्त शोकाकुल थी। तब दैववश देवर्षि श्री नारद जी अकस्मात् वहाँ पधारे और ज्ञान वैराग्य की मूर्च्छा दूर करने के लिये वेद, उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता का बारम्बार पाठ किया। जैसा कि श्री सूत जी कहते हैं—

**वेद वेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ।
बौध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥**

(प०पु०, भा० मा०, २-२७)

‘जब श्री नारद जी वेद और उपनिषद् मन्त्रों की ध्वनि एवं बारम्बार श्रीमद्भगवद्गीता का उच्चारण करके उन्हें जगाने लगे; इससे वे बल लगाकर कुछ उठ गये।’

किन्तु अल्प समय पश्चात् ही वे दोनों पुनः अचेत हो गये। श्रीनारद जी अपना प्रयास व्यर्थ जानकर बहुत चिन्तित हुए, तब आकाशवाणी ने उन्हें श्रेष्ठ साधुपुरुषों से सत्कर्म का अनुष्ठान कराने का आदेश दिया। श्री नारद जी श्रेष्ठ साधुपुरुषों को खोजते-खोजते अन्ततः बट्टीवन जा पहुँचे; जहाँ पर उनकी भेंट श्री सनकादि मुनियों से हुई। तब श्री सनकादि

मुनियों ने श्री नारद को जिस सत्कर्म का ज्ञान कराया वह कुछ और नहीं अपितु श्रीमद्भागवत कथा ही था ।

**सत्कर्म सूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः सु तु गीतः शुकादिभिः ॥**
(प०पु०, भा०मा०, 2—60)

‘विद्वानों ने ज्ञानयज्ञ को ही सत्कर्म सूचक स्वीकार किया है और वह ज्ञान यज्ञ है— श्रीमद्भागवत का संवाद; जो श्री शुकादि मुनियों द्वारा गाया गया है ।’

श्री सनकादि मुनियों के कहने पर भक्ति देवी की कष्ट निवृत्ति के लिये श्री नारद ने हरिद्वार के आनन्द घाट पर श्रीमद्भागवत कथा का समायोजन किया । श्री सूत जी कहते हैं कि वहाँ कथा में समस्त वेदादि शास्त्र भी मूर्तिमान होकर श्रीमद्भागवत श्रवण के लिये पधारे थे ।

**वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ।
दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाययुः ॥**
(प०पु०, भा०मा०, 3—15)

‘वहाँ मन्त्रों सहित समस्त उपनिषद् और वेद, आगम शास्त्र, सत्रह पुराण व षट् दर्शन (योग—न्याय—सांख्य—वैशेषिक—मीमांसा—वेदांत) मूर्तिमान होकर श्रीमद्भागवत श्रवण के लिये पधारे ।’

इससे सिद्ध होता है कि समस्त वेदादि शास्त्र श्रीमद्भागवत के शरणागत हैं । तत्पश्चात् जब श्रीसनकादि मुनियों द्वारा श्रीमद्भागवत माहात्म्य सुनाया जा रहा था, तभी भक्ति देवी अपने तरुण पुत्रों ज्ञान—वैराग्य सहित प्रकट हो गई अर्थात्

ज्ञान—वैराग्य की मूर्च्छा व वृद्धावस्था दोनों ही समाप्त हो गयी। कथा के समापन पर महामुनि श्री शुकदेव पधारें और उन्होंने भक्ति सहित ज्ञान—वैराग्य को अपने शास्त्र श्रीमद्भागवत में स्थापित कर दिया।

**भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चितं समायाति हि वैष्णवानां ।।**

(प०पु०, भा० मा०, ६—९१)

‘तब श्री शुकदेव जी ने दोनों पुत्रों ज्ञान—वैराग्य सहित भक्ति देवी को अपने शास्त्र में स्थापित करके सुरक्षित कर दिया। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत के सेवन से भगवान् श्री हरि निश्चित रूप से वैष्णवों के हृदय में आविर्भूत हो जाते हैं।’
उपर्युक्त वृत्तान्त से स्पष्ट है कि ज्ञान—वैराग्य की जरावस्था व मूर्च्छा जब वेद, उपनिषद् व श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा भी दूर नहीं हो सकी; तब श्री नारद ने श्री सनकादि मुनियों के मुख से श्रीमद्भागवत कथा द्वारा ज्ञान—वैराग्य को पुनः स्वस्थ कराया। इसका तात्पर्य यह है कि कलिकाल में जो शक्ति श्रीमद्भागवत में है, वह वेद, उपनिषद् व श्रीमद्भगवद्गीता में भी नहीं है। यही कारण है कि समस्त वेद, उपनिषद्, आगम शास्त्र, सत्रह पुराण व छः दर्शनशास्त्र मूर्तिमान होकर श्रीमद्भागवत कथा में पधारें। इससे सिद्ध हो जाता है कि श्रीमद्भागवत सर्वशास्त्र चक्रवर्ती है। जैसे एक चक्रवती राजा की सभा में अन्यान्य समस्त अधीनस्थ राजागण अपने चक्रवती राजा का महिमामण्डन किया करते हैं; वैसे ही सर्वशास्त्र चक्रवती ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत की सभा में अन्यान्य राजागण तुल्य शास्त्र समूह अपने अधिनायक श्रीमद्भागवत की सहर्ष अधीनता स्वीकार करते हुए, उनका महिमामण्डन करते हैं।

भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का स्वरूप चिन्मय और त्रिगुणातीत होता है; जिस साधक के अन्तःकरण में ये तीनों प्रवेश कर जाते हैं, वह भी त्रिगुणातीत बन जाता है। पद्मपुराणोक्त इस वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि श्री शुकदेव मुनि ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को श्रीमद्भागवत शास्त्र में स्थापित कर दिया था; इसलिये श्रीमद्भागवत की गणना सतोगुणी पुराणों में होने पर भी यह सतोगुणी नहीं है, अपितु त्रिगुणातीत है। श्रीमद्भागवत न केवल सर्वशास्त्र चक्रवर्ती है, अपितु यह साक्षात् भगवान् ही है।

श्री सूत जी के वचन हैं—

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।

तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णम् ।।

(प०पु०, भा०मा०, ३—६१)

‘तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी समस्त शक्तियों को श्रीमद्भागवत में प्रवेश कराया और इस लोक से अन्तर्धान होकर भी वे इसी श्रीमद्भागवत समुद्र में प्रवेश कर गये।’ अर्थात् अपने मूल दिव्य सच्चिदानन्द रूप से दूसरा रूप प्रकट किया और श्रीमद्भागवत समुद्र में प्रवेश कर गये तथा स्वयं मूल रूप को अन्तर्धान करके अपने परम धाम चले गये।

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।

सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ।।

(प०पु०, भा०मा०, ३—६२)

‘इसी कारण से यह श्रीमद्भागवत भगवान् श्री हरि की प्रत्यक्ष शब्दमयी मूर्ति है। इसकी सेवा, श्रवण, पाठ और दर्शन करने से

पाप नाश होता है ।’

अतः श्रीमद्भागवत सर्वशास्त्र अधिनायक एवं श्रीभगवान् की प्रत्यक्ष शब्दमयी मूर्ति है। श्रीमद्भागवत की पूजा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा है, श्रीमद्भागवत की सेवा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है और श्रीमद्भागवत का दर्शन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन है।

इसीलिये मत्स्य पुराण सहित श्रीमद्भागवत में भी श्रीमद्भागवत को स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान करने की बात कही गयी है।

**प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ।
ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ।।**
(श्री भा० १२-१३-१३)

श्री सूत जी ने श्री शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘जो व्यक्ति भाद्रपद मास की पौर्णमासी के दिन श्रीमद्भागवत को स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान करके भेंटस्वरूप या दान देता है, उसे परम धाम की प्राप्ति होती है ।’

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की असमोर्ध्व महिमा ज्ञात हो जाने पर यही सिद्धान्त निश्चित होता है कि श्रीमद्भागवत न केवल एक सर्वोत्तम शास्त्र है, अपितु यह साक्षात् भगवान् भी है। जिस प्रकार भगवान् से बढ़कर भगवान् का ज्ञान अन्य किसी को नहीं हो सकता; उसी प्रकार श्रीमद्भागवत से बढ़कर भगवान् या परमेश्वर विषयक ज्ञान अन्य किसी शास्त्र में उपलब्ध नहीं है। श्रीमद्भागवत शास्त्र दिव्य ज्ञान रूपी प्रकाश का अक्षय स्रोत है, यह उस सूर्य के समान है जो अकेला ही विश्व के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने में सक्षम है।

जैसा कि श्रीमद्भागवत में कथित है—

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

(श्री भा० १-३-४३)

श्री सूत ने श्री शौनकादि मुनियों के प्रति कहा—

‘भगवान् श्रीकृष्ण के धर्म, ज्ञानादि सहित अपने परमधाम चले जाने के पश्चात् कलियुग में अज्ञानान्धकार से अन्धे लोगों के लिये यह श्रीमद्भागवत पुराण रूपी सूर्य इस समय उदित हुआ है ।’

विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामीपाद जी श्री तत्त्वसन्दर्भ अनुच्छेद चौदह में लिखते हैं—

“अर्कतारूपकेण तद्विना नान्येषां सम्यग्वस्तु प्रकाशकत्वमिति प्रतिपाद्यते” अर्थात् ‘श्रीमद्भागवत का सूर्य के साथ रूपक करने से यही प्रतिपादित होता है कि श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रों में परमार्थ तत्त्व वस्तु को सम्यक् रूप से प्रकाशित करने की सामर्थ्य नहीं है ।’ जैसे सूर्य में ही विश्व को प्रकाशित करने की सामर्थ्य है; वैसे एकमात्र श्रीमद्भागवत में ही परमार्थ तत्त्व परमेश्वर को प्रकाशित करने या ज्ञान कराने की सामर्थ्य है ।

अतः वर्तमान कलिकाल में जो अज्ञानान्धकार से अन्धे बने हुए हैं और परमार्थ तत्त्व परमेश्वर के विषय में दिव्य ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक हैं; उनके लिये श्रीमद्भागवत ही एकमात्र प्रबलतम प्रमाण है । एकमात्र यही सर्वशास्त्रों के मध्य चक्रवर्ती राजा की भाँति विराजित है । अन्यान्य समस्त वैदिक शास्त्र भी प्रमाण है, किन्तु श्रीमद्भागवत तो सर्वप्रमाण चक्रवती है ।